VISHWA - Hindi Literary Magazine

PRINTED VISHWA - ISSN 25721550
ONLINE e-VISHWA - ISSN 25721569

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

APRIL 2025

विश्वा

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

वर्ष 41 ✤ अंक 2 ✤ अप्रैल 2025

विशेष परिशिष्ट : 22वाँ अधिवेशन

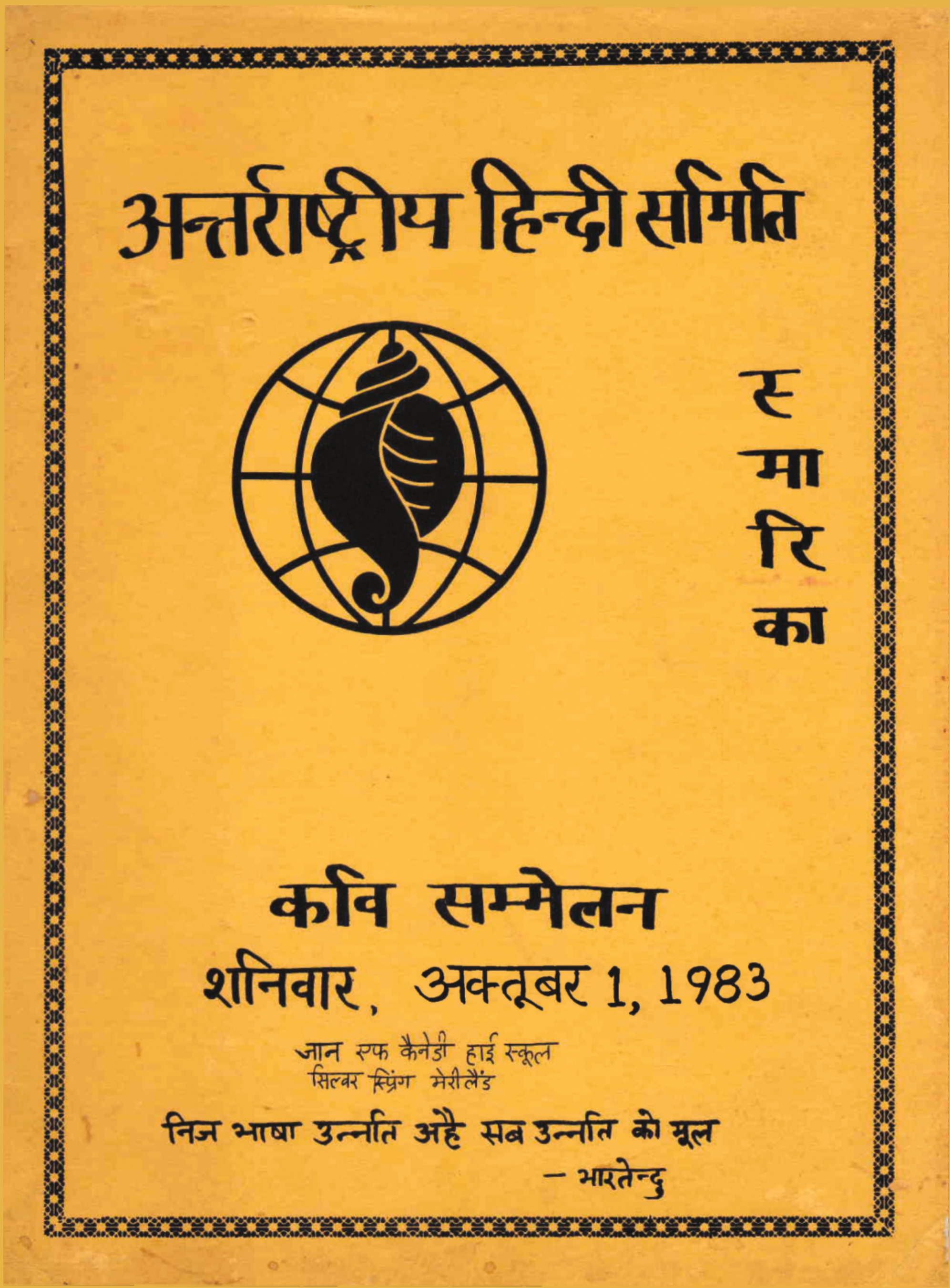

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति

स्मारिका

कवि सम्मेलन

शनिवार, अक्तूबर 1, 1983

जान एफ कैनेडी हाई स्कूल
सिल्वर स्प्रिंग मेरीलैंड

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
— भारतेन्दु

देश के लिए एक मंगल कामना

एकता, स्वतंत्रता, समानता रहे
देश के चरित्र की महानता रहे

कंठ हैं अनेक गीत एक राष्ट्र का
रंग हैं अनेक चित्र एक राष्ट्र का

रूप हैं अनेक भाव एक राष्ट्र का
शब्द हैं अनेक अर्थ एक राष्ट्र का

चेतना समग्रता समानता रहे
देश के चरित्र की महानता रहे

राज्य हैं अनेक संघ एक राष्ट्र का
वर्ग हैं अनेक सर्ग एक राष्ट्र का

भक्त हैं अनेक धर्म एक राष्ट्र का
कर्म हैं अनेक लक्ष्य एक राष्ट्र का

सादगी सहिष्णुता समानता रहे
देश के चरित्र की महानता रहे

व्यक्ति हैं अनेक रक्त एक राष्ट्र का
वाक्य हैं अनेक लेख एक राष्ट्र का

गाँव हैं अनेक स्वप्न एक राष्ट्र का
शंख हैं अनेक चक्र एक राष्ट्र का

जागरण मनुष्यता समानता रहे
देश के चरित्र की महानता रहे

-वेद व्यास

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की त्रैमासिक मुख पत्रिका

विश्वा

प्रकाशन त्रैमासिक – जनवरी, अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर
Published Quarterly – January, April, July, October

प्रबन्ध सम्पादक - **श्री आलोक मिश्रा**
Managing Editor - **Mr. Alok Misra**
New Hampshire, U.S.A.
ई-मेल - alok.misra@hindi.org
दूरभाष - 603-681-9150

रमेश जोशी, प्रधान सम्पादक
Mr. Ramesh Joshi, Chief Editor
Email – joshikavirai@gmail.com
editor@hindi.org

श्रीमती अर्चना पांडा, डिजीटल मीडिया एडिटर
Mrs. Archana Panda, Digital Media Editor
Email – panda_archana@yahoo.com

भारती मिश्र, संकलन, संपादन सहयोग
Bhati Mishra, Collection, Co-editor
Email – batua896@gmail.com

यदि आप चाहते हैं कि आपके मित्रगण भी विश्वा पढ़ें, विश्वा से जुड़ें तो हमें उनका ई मेल का पता उपलब्ध करवा दें जिससे हम उन्हें विश्वा की पीडीएफ़ भिजवा सकें। संपर्क – mail@hindi.org

विश्वा के लेखकों से

1. एक बार में दो से ज्यादा प्रविष्टियाँ न भेजें।
2. रचनाओं में एक पक्षीय, कट्टरतावादी, अवैज्ञानिक, साम्प्रदायिक, रंग-नस्लभेदी, अतार्किक, अन्धविश्वासी, अफवाही और प्रचारात्मक सामग्री से परहेज करें। सर्वसमावेशी और वैश्विक मानवीय दृष्टि अपनाएँ।
3. अपनी रचना की प्रूफ रीडिंग करके भेजें। वर्तनी (Spelling) के लिए हम जिम्मेदार नहीं होंगे। इससे रचना की गुणवत्ता भी संदेहास्पद हो जाती है।
4. रचना एरियल यूनिकोड MS या मंगल फॉण्ट (12) में भेजें।
5. पेज पर सिर्फ रचना का नाम और रचना ही लिखें। रचना छपने लायक फॉर्मेट में भेजें।
6. रचनाएँ एक से अधिक हों तो अलग-अलग word और pdf document में भेजें।
7. अपने बायो डेटा में डाक का पता, ईमेल, फोन नंबर ज़रूर भेजें। हाँ, ये सूचनाएँ उतनी ही छापी जायेंगी जितना आप चाहेंगे लेकिन हमारी जानकारी के लिए ये आवश्यक हैं। यदि आपकी पुस्तकें प्रकाशित हैं तो उनका विधा सहित उल्लेख भी करें। अपने बायोडाटा को word और pdf document में भेजें।
8. अपनी पासपोर्ट साइज़ तस्वीर अलग से भेजें। रचना के साथ अप्रकाशित और मौलिक होने का प्रमाणपत्र भी संलग्न करें।
9. रपट, रचना, समाचार के साथ के फोटो 250px तक होनी चाहिए।
10. 'विश्वा' के लिए भेजी गई रचना दो महिने तक कहीं न भेजें।
11. इंटरनेट की सुविधा का दुरुपयोग करते हुए एक ही रचना पचासों पत्रिकाओं में भेजकर अपनी और हमारी प्रतिबद्धता को सस्ता न बनाएँ।
12. प्रवासी अपने यहाँ की किसी व्यक्तिगत उपलब्धि तथा सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक हलचलों की सचित्र-प्रामाणिक जानकारियाँ उचित तरीके से भेज सकते हैं।
13. यदि छंद का ज्ञान नहीं है तो कोई बात नहीं लेकिन यदि छंद में लिखें तो उसके अनुशासन का पूरा पालन करें।
14. हिन्दी से इतर भाषाओं के जीवन मूल्यों और मानवीय गरिमा से संपन्न रचनाओं का अनुवाद भी भेज सकते हैं। ऐसे में जहाँ मूल लेखक से अनुमति आवश्यक हो तो वह भी संलग्न करें।
15. पुस्तक की समीक्षा के लिए दो प्रतियाँ भेजें। हस्तलिखित, स्केनिंग और पीडीऍफ़ वाली सामग्री का उपयोग हम नहीं कर सकेंगे।
16. किसी भी रचना पर किसी प्रकार के मानदेय का कोई प्रावधान नहीं है।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनका अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की रीति-नीति से कोई संबंध नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association

संस्थापक – डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह
Founder – Dr. Kunwar Chandraprakash Singh

बोर्ड के सदस्य / Board of Trustees

श्री तरुण सुरती (TN) अध्यक्ष, न्यासी समिति
Mr. Tarun Surti, Chairman 615-812-6164 tarunsurti@yahoo.com

श्री आलोक मिश्र (NH)
Mr. Alok Misra 603-681-9150 alok.iha@gmail.com

डॉ. रवि प्रकाश सिंह (TN)
Dr. Ravi Prakash Singh 615-785-7888 ngdsdg@gmail.com

श्री स्वप्न धैर्यवान (TX)
Mr. Swapan Dhairyawan 281-382-0348 swapandha@yahoo.com

श्री इंद्रजीत शर्मा (NY)
Mr. Inderjeet Sharma 917-273-9744 guru.richmondhill@gmail.com

कार्याधिकारी / Executive Officers

डॉ. शैल जैन (OH) अध्यक्ष
Dr. Shail Jain, President 330-421-7528 president@hindi.org

श्री संजीव जयसवाल (TX) सचिव
Mr. Sanjeev Jaiswal, Secretary 508-369-7639 secretary@hindi.org

श्री चन्द्रकांत पटेल (TX) कोषाध्यक्ष
Mr. Chandrakant Patel, Treasurer 832-423-7979 treasurer@hindi.org

कार्यकारी समितियाँ Committees Chairs

प्रौद्योगिकी / Technology

श्री संजीव जयसवाल
Mr. Sanjeev Jaiswal (TX) 508-369-7639 secretary@hindi.org

श्री उमेश कुमार
Mr. Umesh Kumar (TN) 615-870-7088 umeshkharwar79@gmail.com

हिन्दी शिक्षण / Hindi Education

डॉ. राकेश कुमार
Dr. Rakesh Kumar (IN) 317-730-4086 arksri@yahoo.com

श्रीमती किरण खेतान
Mrs. Kiran Khaitan (OH) 330-622-1377 kirankhaitan@yahoo.com

निधि संग्रह / Fundraising

डॉ. शोभा खंडेलवाल
Dr. Shobha Khandelwal (OH) 330-421-6638 shobhakhandelwal@gmail.com

शाखा समन्वय / Chapter coordination

श्रीमती अनीता सिंघल
Mrs. Anita Singhal (TX) 817-319-2678 anitagsinghal@gmail.com

सदस्यता / Membership

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhari Pratap Singh (MD) 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

विश्वा / श्री रमेश जोशी
Vishwa / Mr. Ramesh Joshi (India) 91-94601-55700 joshikavirai@gmail.com

संवाद / डॉ. शैल जैन
Samvad Newsletter / Dr. Shail Jain 330-421-7528 president@hindi.org

शाखा संयोजक, Chapter Presidents USA

श्री अश्वनी भरद्वाज
Mr. Ashwani Bhardwaj NE Ohio 216-926-7890 ashwani_69@yahoo.com

श्रीमती वीणा शर्मा
Mrs. Veena Sharma Dallas, TX 214-455-6592 mohan_veena@yahoo.com

श्री सौंदर्य (संजय) सोहोनी
Mr. Saundarya Sohoni Houston 281-943-9758 saundaryasohoni@gmail.com

श्रीमती कमला पंचाल
Mrs. Kamla Panchal New York, NY 516-279-6612 kamlapanchal@aol.com

सुश्री सीमा वर्मा
Ms Seema Verma Nashville, TN 904-525-1795 call.seema@gmail.com

चौधरी प्रताप सिंह
Choudhary Pratap Singh MD 202-413-5918 chpratapsingh1008@gmail.com

डॉ. बबिता श्रीवास्तव
Dr. Babita Srivastava New Jersey, NJ 908-892-6133srivastava.babita@yahoo.com

श्री विरेश सिंह
Mr. Viresh Singh Philadelphia,PA 484-425-7734 vireshsingh999@gmail.com

श्रीमती विद्या सिंह
Mrs. Vidya Singh Indiana 317-514-6857 ihaindiana@gmail.com

शाखा संयोजक, Chapter Presidents India

श्रीमती मुन्ना जगेतिया Hyderabad
Mrs. Munna Jagetia A.P., Telangana 91-94901-89715 munnaop@gmail.com

डॉ. मनमोहन शुक्ला
Dr. Manmohan Shukla Prayagraj, UP 91-83407-10237 shukla.mm.147@gmail.com

डॉ. शोभारानी सिंह Bihar
Dr. Shobharani Singh Jharkhand 91-99393-92605 drshobharani.vama@gmail.com

श्री अशोक लव
Mr. Ashok 'Lav' Delhi, NCR 91-89206-08821 kumar1641@gmail.com

डॉ.(प्रो.) ओम प्रकाश तिवारी
Dr. (Prof.) Om Prakash Tiwari Maharastra 91-96511-23803 optiwari9651@gmail.com

मुद्रण एवं प्रस्तुति :

अनुज्ञा बुक्स

(पुस्तक प्रकाशक, विक्रेता और मुद्रक)

1/10206, LANE NO. 1E, WEST GORAKH PARK, SHAHDARA, DELHI-110032
CELL/WhatsApp 07291920186, 09350809192 • e-mail: anuugyabooks@gmail.com
salesanuugyabooks@gmail.com • www: anuugyabooks.com

अनुक्रम

सम्पादकीय	तीरथपतिहिं आव सब कोई	5
संस्मरण	आप हमारी गंगा कैसे ले आइएगा	6
विशिष्ट आलेख	सनातन की खोज – *विद्यानिवास मिश्र*	7
विशिष्ट शृंखला : ज्ञानपीठ पुरस्कार 1981	अमृता प्रीतम –*डॉ. दीपक पाण्डेय*	8
हिन्दी संस्थाओं की पतनगाथा-7	मणिपुर हिन्दी परिषद् इंफाल –*डॉ. अमरनाथ*	11
सरोकार	काम, काम, कितना काम –*डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल*	14
एक गजल	*डॉ. रामदरश मिश्र* की प्रसिद्ध ग़ज़ल	15
रोचक	शब्द चलते हैं –*डॉ. भोलानाथ तिवारी*	16
साक्षात्कारों के झरोखे से	पद्मश्री शतायु सहज सर्जक डॉ. रामदरश मिश्र –*वैद्यनाथ झा*	17
प्रेरक	दया धर्म का मूल है	19
विदेश में देसी (10)	विश्व में लोकतंत्र–परंपरा और चुनौतियाँ –*धर्मपाल महेंद्र जैन*	20
कथा-कहानी	मिठाईवाला –*भगवती प्रसाद वाजपेयी*	22
गीत	समय का प्रश्न : कौन? –*मदन लाल शर्मा*	24
वे दिन : वे लोग	न लेना, न देना : मगन रहना –*शिवांगी जोशी*	25
	बनारस पर फ़िदा ग़ालिब	25
	आबे ज़मज़म और गंगा	25
बधाई	मनु भाकर, प्रो. स्नेह खेमका, चंद्रिका टंडन, महिला क्रिकेट टीम	19, 25
भारत की खोज : पहली दो कड़ियाँ	एक : अहमदनगर का किला, दो : तलाश *पंडित जवाहरलाल नेहरू*/अनुवाद-संक्षिप्तीकरण- सौजन्य : *डॉ. निर्मला जैन*	26
इस अंक का मुखपृष्ठ		31
नोबल कथाएँ	(1) सेल्मा लागर्लूफ़ –*डॉ. चारु सिंह*	32
कथा-कहानी	हिंदीतर भारतीय लघुकथा संसार –*डॉ. अशोक भाटिया*	36
पर्व/उत्सव/ सामयिक : पुस्तक मेला	ज्ञान का महाकुम्भ –*राकेश अचल*	38
प्रसंग-संदर्भ : 22 वाँ द्विवार्षिक अधिवेशन	अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति का द्विवार्षिक कुम्भ : घर-आँगन	39
	परिवार के नए सदस्यों का स्वागत	40
हलचल :	पद्म पुरस्कारों से सम्मानित प्रवासी भारतीय अमेरिकी /कनाडाई	10
	सार्थक कोशिश	10
	अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी दिवस : प्रतियोगिता : सम्मान समारोह	40
	भाषण प्रतियोगिता : अमेरिका में रहने वाले युवा हिन्दी क्यों सीखें?	40
	भारतीय संस्कृति और परंपराएँ	42
	व्यक्तिगत अनुभव	43
	मातृभाषा	48
अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति के आदिम शिलालेख		44
हलचल :	समिति परिवार के आजीवन सदस्यों की सहित्यिक उपलब्धियां	46
	1. डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह, 2. डॉ. महेश दिवाकर, 3. सुमनेश सुमन	46
	4. डॉ. रामगोपाल भारतीय, 5. वेद बटूक	47
	6. 20 वर्ष की साधना : भारतेन्दु श्रीवास्तव	47
	7. अशोक लव (दिल्ली एन सी आर के शाखा संयोजक)	47
	8. रमेश जोशी, प्रधान संपादक ‘विश्वा’	47
	9. डॉ. करुणा पांडे 10. लता कादंबरी 11. सत्यपाल सत्यम	48
श्रद्धांजलि	उषा गुप्ता, के. के गुप्ता एवं मधुसूदन झवेरी	39

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति
International Hindi Association
A 501(c)(3) Non-profit Organization ● 2129 Stratford Road, Murfreesboro, TN 37129, U.S.A. ● Founded in 1980
www.hindi.org

MEMBERSHIP FORM

Please fill out all questions on the form clearly, sign, and return it via email to: **treasurer@hindi.org**, or via mail to: Treasurer, 5907 Majestic Pines Dr, Kingwood, TX 77345, USA. You may print the form, sign, and email a camera image.

Membership fee is nonrefundable. Associate Life members enjoy same benefits as regular Life members, except for voting rights. All members get: 1) Digital Vishwa magazine quarterly, and Samvad newsletter monthly. 2) Discounts on IHA products, services, and events. 3) Volunteer opportunities in US and India. 4) Early notifications.

Title: ☐Mr. ☐Mrs. ☐Ms. ☐Dr. ☐Prof. **Date:** ____________________

First Name: ____________________ **Last Name:** ____________________

Email ID: ____________________ **Mobile Number:** ____________________

Street Address: ____

City: ____________________ **State:** ____________________

Postal Code: ____________________ **Country:** ____________________

Spouse's Name: (optional) ……..……………………………………………………………………………..

Membership: Select one ☐ Life Member $250 USD ☐ Associate Life Member $150 USD
☐ Annual Member $35 USD ☐ Institutional Annual Member $75 USD

Please make check payable to 'International Hindi Association' in USD and mail to above-mentioned address. *Or* ***Pay Online***

Do you wish to receive paper copy of Vishwa magazine, please check here: ☐
There could be a (USD $15/year) printing & mailing charge in the future.

Specimen Signature:
Print or Insert photo of your Signature

Would you like to be a part of the Leadership Team and volunteer in your area of interest or expertise ?
(Check all that apply)

☐ Hindi/English Content Writing
☐ Information Technology, Website
☐ Social media, Digital Marketing
☐ Fundraising, Sponsorships
☐ Public/Government Relations
☐ Hindi Education
☐ Graphics, Video
☐ Organization
☐ Legal, Compliance
☐ Sales, Support
☐ Other (please specify): ____________________

'Vishwa' welcomes original writings in Hindi from all quarters. Writings dealing with immigrant experiences are especially welcome. For further information, or to submit your writings for consideration, please contact: The Editor, Mr. Ramesh Joshi, Phone USA +1 (330) 688-4927, India +91 94601 55700; Email: joshikavirai@gmail.com or editor@hindi.org

Should this information change in the future, please contact us to update. All your information is kept confidential.
International Hindi Association is a non-political, non-religious, lingo-cultural organization. Jan 2024

सम्पादकीय

तीरथपतिहिं आव सब कोई

मानस के बालकाण्ड में है यह प्रसंग।

माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई।।
देव दनुज किन्नर नर श्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं।।

जब भी सूर्य किसी राशि में प्रवेश करता है तब संक्रांति होती है। इस प्रकार भारतीय संवत के अनुसार वर्ष में 12 राशियों की 12 संक्रांतियाँ होती हैं लेकिन सबसे महत्वपूर्ण मकर संक्रांति होती है। जब सूर्य इस राशि में प्रवेश करता है तो सूर्य उत्तरायण हो जाता है अर्थात अब धरती का उत्तरी भाग सूर्य के निकट होगा और अब तक की भयंकर सर्दी कम होने लगेगी। सृष्टि में नव जीवन के प्रतीक बसंत की कसमसाहट शुरू हो जाती है। अचानक शिराओं में रक्त की गति तीव्र हो जाती है।

शीतकाल में सृष्टि शीत समाधि में चली जाती है। जीवन ठहर सा जाता है। पेड़-पौधे अपने पत्ते गिराकर, श्रृंगार त्यागकर नए उल्लास की प्रतीक्षा में समाधि लगाए जीवन की ऊष्मा की प्रतीक्षा करते हैं। पृथ्वी का दक्षिणी ध्रुव भी है और वह भी उत्तरी ध्रुव की तरह जीवन की ऊष्मा के लिए अपने ग्रह-नक्षत्रों के हिसाब से सूर्य के दक्षिणायन होने की प्रतीक्षा करता होगा। चूँकि तब हमें इस दक्षिणी भाग के बारे में इतना पता नहीं था। इसलिए हमने अपने उत्तरी गोलार्ध को चित्रित किया।

क्रिश्चियन एरा (सन) में ईसा से पहले भारतीय संवत के दसवें महिने पौष की तरह दसवां महिना जनवरी ही हुआ करता था। ईसा के जन्म के बाद से जनवरी को पहला महिना बना दिया गया अन्यथा जैसे चैत्र से भारतीय संवत शुरू होता है वैसे ही अप्रैल से नया वर्ष शुरू हुआ करता था। बसंत से बेहतर नए वर्ष की शुरुआत और कब से हो सकती है। बसंत, जब सृष्टि नए अँखुओं के रूप में रोमांचित हो उठती है।

चूँकि इस्लामिक वर्ष चंद्रमा से संचालित होता है इसलिए उसकी रमजान की आवृति बदलती रहती है। दिन-रात और ऋतुएँ सूर्य से तय होती हैं इसलिए संक्रातियों में अंतर नहीं आता।

मानस में रामकथा के अनेक श्रोता-प्रस्तोता हैं। लोमश ऋषि काकभुशुंडी को सुनाते हैं, काकभुशुंडी गरुड़ जी को सुनाते हैं, याज्ञवल्क्य भरद्वाज को सुनाते हैं और शिव पार्वती को सुनाते हैं। वैसे सर्वाधिक प्रसिद्ध वाल्मीकि और तुलसी के अतिरिक्त अनेक भाषाओं में, बहुत से कवियों-लेखकों ने राम को आधार बनाकर रचनाएँ की हैं। तभी मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं–

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।।

महर्षि भरद्वाज का आश्रम, उत्तर प्रदेश के प्रयागराज शहर में था। यह आश्रम गंगा नदी के किनारे स्थित है। यह आश्रम, इलाहाबाद विश्वविद्यालय और बालसन चौराहे के बीच में है।

तुलसी की शुरू में उद्धृत पंक्तियों से पता चलता है कि यह सबका स्वतः स्फूर्त उत्सव था। इसमें कोई अपेक्षित या उपेक्षित नहीं था। कोई विशिष्ट या कोई निकृष्ट नहीं। हीनोपमा के लिए क्षमा सहित, जैसे कि वर्षा ऋतु में रोशनी के चारों तरफ मँडराने वाले असंख्य दीवाने पतंगे सहज रूप से निकल आते हैं जैसे सुबह सूरज, बसंत में नए पत्ते और बारिश होते ही मिट्टी से सोंधी गंध। अगर राम के समय बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान, सिक्ख होते तो तुलसी उनका भी समागम में स्वागत करते देव दनुज किन्नर नर श्रेणी सहित।

यह अवसर अमृत की खोज का उत्सव भी है। वह अमृत जिसे अनादि काल में किसी शुभ संयोग में देव और दनुज दोनों ने सहमति, सहयोग और श्रम से हासिल किया था। सहमति, सहयोग और श्रम ही अमृत की खोज का मार्ग होता है। लेकिन ले भागा इन्द्र पुत्र जयंत। कोई कामधेनु, कोई कल्पवृक्ष, कोई ऐरावत, कोई उच्चैश्रवा, कोई लक्ष्मी, कोई कौस्तुभ मणि, कोई सारंग धनुष ले गया। भोले भण्डारी ने पिया हलाहल विष और दानवों के हिस्से आई वारुणी। इसी कारण तो समस्त पुराण इन दोनों के अनवरत संघर्ष से नहीं भरे पड़े हैं?

शायद तभी 'दिनकर' के महाकाव्य 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं–

धर्मराज यह भूमि किसी की नहीं क्रीत है दासी
है जन्मना समान परस्पर इसके सभी निवासी
सबको मुक्त प्रकाश चाहिए सबको मुक्त समीरण
बाधा रहित विकास, मुक्त आशंकाओं से जीवन
लेकिन विघ्न अनेक अभी इस पथ पर पड़े हुए हैं
मानवता की राह रोककर पर्वत अड़े हुए हैं
न्यायोचित सुख सुलभ नहीं जब तक मानव-मानव को
चैन कहाँ धरती पर तब तक शांति कहाँ इस भव को
जब तक मनुज-मनुज का यह सुख भाग नहीं सम होगा
शमित न होगा कोलाहल संघर्ष नहीं कम होगा
उसे भूल नर फँसा परस्पर की शंका में, भय में

निरत हुआ केवल अपने ही हेतु भोग संचय में
प्रभु के दिए हुए सुख इतने हैं विकीर्ण धरती पर
भोग सकें जो उन्हें जगत में, कहाँ अभी इतने नर
सब हो सकते तुष्ट एक-सा सब सुख पा सकते हैं
चाहें तो पल में धरती को स्वर्ग बना सकते हैं

तो जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है, जब उत्तरायण होता है तब सभी अमृताभिलाषी तीर्थराज में आते हैं। तीर्थराज प्रयाग। जहाँ भी दो नदियाँ मिलती हैं वहाँ 'प्रयाग' होता है। मिलना ही प्रयाग है। मिलना की मानवता का अमृत है। होने को तो और भी 'प्रयाग' हैं– विष्णु प्रयाग, कर्ण प्रयाग, नन्द प्रयाग, रुद्र प्रयाग और देव प्रयाग। ''प्रयागराज' कुछ नहीं होता। फिर इलाहाबाद वाला प्रयाग ही तीर्थराज क्यों? क्योंकि यहाँ अमृत कुम्भ छलका था। इसी तरह अमृत तो तीन और जगहों पर भी छलका था– हरिद्वार, उज्जैन और नासिक में भी। यहाँ तीन नदियाँ मिलती हैं– गंगा, यमुना, सरस्वती। सरस्वती लुप्त है।

अन्य प्रयागों के होते हुए भी इलाहाबाद वाला प्रयाग ही तीर्थराज क्यों? संभवतः विवेक के लिए सरस्वती की तलाश के कारण।

क्या सरस्वती की तलाश इतनी कठिन और दुर्गम है? यहीं गंगा के किनारे बैठ वह अछूत मोची तो कहता था–

मन चंगा तो कठौती में गंगा। उसकी दमड़ी तो खुद गंगा हाथ बढ़ाकर लेती थी। लेकिन रैदास को समझने के लिए सहज होना पड़ता है। सहज समाधि। जब साँस साँस सुमारिणी बन जाती है और मृगछाला सब की सब धरणी।

और यहीं का झीनी झीनी चदरिया को ज्यों की त्यों धर देने वाला जुलाहा राम का अहसान न लेने के लिए काशी छोड़कर कर्मनाशा के तट पर बसे मगहर चला जाता है जहाँ मरने पर कहते हैं मोक्ष नहीं मिलता–

जो काशी तन तजे कबीरा रामहि कहा निहोरा।

और वह इस घट, इसकी औकात और इसमें अमृत के निवास सब को जानता था–

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह तत कहा गियानी

तभी कह सकता था–

हम न मरब मरिहैं संसारा।

और तभी मीरा बाह्य अमृत की खोज में कहीं नहीं जाती–

मेरे पिया मेरे घट में बसत हैं ना कहुँ आती जाती।

उसे किसी लक्जरी कॉटेज में कल्पवास और विशिष्ट सुरक्षा के बीच खुशामदी महामंडलेश्वरों द्वारा दिव्य अमृत-स्नान करवाए जाने की भी कोई जरूरत नहीं।

इसी अमृत की खोज में

माघ मकरगत जब रवि होई
तीरथपतिहिं आव सब कोई

अमृत अपने ही घट में है। वह किसी जयंत के कब्जे में नहीं है। खोजें तो। वह कभी भी कठौते में गंगा की तरह, कुम्भ के जाम में फँसे बेहाल भटकते यात्रियों के लिए अमृत बनकर इलाहाबाद चौक के घरों-बाजारों, मस्जिदों-मदरसों में छलक जाता है।

–रमेश जोशी

कलह नहीं, सद्भावना

27 सितंबर 1893 को सम्मेलन के समापन सत्र को संबोधित करते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा था, "पवित्रता, शुद्धता और उदारता, दुनिया के किसी एक धर्म की मिल्कियत नहीं है। सभी धर्मों ने सर्वश्रेष्ठ गुणों वाले महान पुरुषों और महिलाओं को जन्म दिया है। यह बात साबित होने के बाद भी अगर कोई व्यक्ति सिर्फ अपने धर्म के आगे बढ़ने और बाकी धर्मों के नष्ट होने का सपना देखता है, तो मुझे उस पर दिल की गहराइयों से तरस आता है। ऐसे लोगों को मैं बताना चाहूँगा कि तमाम विरोधों के बावजूद बहुत जल्द हर धर्म के बैनर पर लिखा होगा 'युद्ध नहीं, सहयोग!', 'विनाश नहीं, मेल-मिलाप!', 'आपसी कलह नहीं, शांति और सद्भावना!'

"भारत की लाखों पीड़ित जनता सूखे गले से जिस चीज़ के लिए बार-बार गुहार लगा रही है, वह है रोटी। वे हमसे रोटी माँगते हैं और हम उन्हें पत्थर पकड़ा देते हैं। भूख से मरती जनता को धर्म का उपदेश देना, उसका अपमान है। भूखे व्यक्ति को तत्व-मीमांसा की सीख देना उसका अपमान है।" **–विवेकानंद**

संस्मरण : आप हमारी गंगा कैसे ले आइएगा

भारत रत्न शहनाई वादक बिस्मिल्ला ख़ां का एक बहुत ही मशहूर क़िस्सा है, जिसे उन्होंने ख़ुद अपनी ज़बानी सुनाया था। वो एक कार्यक्रम के सिलसिले में अमेरिका गए हुए थे, जहाँ उनसे एक अमेरिकी अधिकारी ने कहा कि ख़ां साहेब आप यहाँ रह जाइए। यहाँ के लोगों को शहनाई सिखाइए। इस पर ख़ां साहेब बोले सिखाने के लिए तो साल-दो साल रहना पड़ेगा। लेकिन हम अकेले तो नहीं हैं। तब उस अमेरिकी ने कहा कि कोई बात नहीं, कार लीजिए, मोटर लीजिए, डॉलर लीजिए। 40-50 जितने आदमी हों आपके, सबको ले आइए. इस पर बिस्मिल्ला साहेब ने कहा– हमारे लोगों को आप ला देंगे, लेकिन आप यहाँ हमारी गंगा कैसे ले आइएगा।

सनातन की खोज

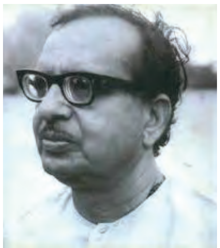

विद्यानिवास मिश्र

हम हिन्दू किसे कहेंगे– जन्म से हिन्दू माँ-बाप की सन्तान को हिन्दू कहेंगे, या लोग मुझे हिन्दू कहते हैं इसलिए अपने-आपको हिन्दू कहेंगे, या विवेकपूर्ण निर्णय के अनुसार अपने को हिन्दू मानेंगे? क्या हिन्दू धर्म में दीक्षित हुए बिना भी कोई हिन्दू हो सकता है? इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर के द्वारा हम हिन्दू धर्म का सामान्य लक्षण कर सकते हैं।

हिन्दू एक बहुत ही व्यापक नाम है, पर यह नाम हिन्दुओं द्वारा हिन्दुओं के लिए दिया हुआ नाम नहीं है। यह नाम बाहर वालों ने दिया और यह उन सबके साथ चिपक गया है जो मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी जैसी परिभाषित कोटियों में नहीं आते। सही बात यह है कि प्राचीन शास्त्रों में केवल 'धर्म' शब्द मिलता है और उसके पूर्व दो या तीन ही विशेषण पाए जाते हैं– मानव धर्म, सनातन धर्म, आर्य धर्म। आर्य धर्म और सद् धर्म शब्द का प्रयोग बौद्धों ने अपने आष्टांगिक मार्ग के सम्बन्ध में किया। अधिकतर धर्मशास्त्र केवल धर्म का ही प्रयोग करते रहे हैं। धर्म मजहब या रिलीजन से जिस प्रकार भिन्न है, उसी प्रकार हिन्दू मुसलमान, यहूदी, ईसाई आदि से भिन्न है। मज़हब का अर्थ है कुछ निश्चित विश्वास, जिन्हें न मानने से आदमी उस मजहब की सदस्यता को खो देता है। हिन्दू धर्म में इस प्रकार के किसी निश्चित विश्वास पर बल नहीं दिया गया है। धर्म वस्तुतः पूरी तरह जीने का एक तरीका है। वह विश्वासों से अधिक जीने की प्रक्रिया पर आधारित है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म में इतने अधिक सम्प्रदाय, इतने अधिक प्रकार के प्रादेशिक भेद और इतने अधिक प्रकार की रंग-बिरंगी जातियों का समावेश है। यह न तो देश से बँधा है, न ही काल से। जिस किसी देश का व्यक्ति हिन्दू जीवन-दर्शन के साथ साझेदारी रखता है, वह अपने को हिन्दू कह सकता है। हिन्दू धर्म में संस्थाएँ हैं, पर हिन्दू धर्म संस्थागत धर्म नहीं है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि जब हिन्दू धर्म में भी मन्दिर, ब्राह्मण, पुरोहित, तांत्रिक, धर्माचार्य, महंत जैसी संस्थाएँ हैं तो हिन्दू धर्म भी संस्थागत धर्म माना जाना चाहिए। इसका समाधान यह है कि ये संस्थाएँ तो हैं, पर ये ही सब कुछ नहीं हैं, मानने वाला भी कुछ है।

संस्थागत धर्म से अभिप्राय ऐसी व्यवस्थाओं से है जहाँ सारे निर्णय व्यक्ति से नहीं, बल्कि संस्था से लिये जाते हैं। वह संस्था चाहे कुछ चुने हुए व्यक्तियों की हो, चाहे धर्माचार्य की गद्दी हो या मन्दिर का पुजारी हो, या किसी भी प्रकार के धर्म-गुरु के रूप में हो। हिन्दू धर्म संस्थागत इस माने में नहीं है कि वह संस्थाओं तक सीमित नहीं है और उसमें सबसे अधिक महत्त्व दो बातों को है– एक, व्यक्ति के विवेक को और दूसरे, अमूर्त-शास्त्र को। प्रत्येक धर्मशास्त्र में साफ़-साफ़ स्पष्ट लिखा हुआ है कि देश और काल का विचार करके आदमी को शास्त्रविहित धर्म के सम्बन्ध में निर्णय लेना चाहिए।

धर्म के चार प्रमुख अंग हैं– वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मानुकूलता। इसका अर्थ है कि शास्त्र का ज्ञान कोई ठहरा हुआ ज्ञान नहीं है, वह वेद से परिभाषित है, स्मृति सदाचार से और सदाचार अपनी अनुकूलता से। इसलिए शास्त्र एक जड़ वस्तु नहीं, यह निरन्तर जीवन की व्याख्या में उतरते रहने वाला स्मृति से समृद्धतर होने वाला मनुष्य का निरन्तर अनुभव है। हिन्दू का प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान मंत्रोच्चारणपूर्वक होता है। मंत्र के साथ जुड़ने का अर्थ है, एक साथ एक लम्बी परम्परा से जुड़ना और मनुष्य की ज्ञान-यात्रा की प्रारम्भिक बिन्दु से जुड़ना। दैनिक-चर्या से अपेक्षा की जाती है कि मनुष्य ऋग्वेद से लेकर आज तक के महत्त्वपूर्ण धार्मिक अनुभव की वाक्-सम्पदा को किसी-न-किसी रूप में दुहराए– संध्योपासन के रूप में, स्तोत्रपाठ के रूप में, या ग्रंथपाठ के रूप में। इस अर्थ में शास्त्र को कोई गतिशील संस्था कहना चाहे तो कह सकता है, परन्तु यह एक सीमित शास्त्र नहीं, इसलिए हम हिन्दू धर्म को संस्थागत धर्म नहीं कहेंगे।

हम यह कह सकते हैं कि हिन्दू धर्म ज्ञान को आचरण से जोड़ते रहने की सतत प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की पहली विशेषता है– जीवन में निरन्तरता और अखंडता का अनुभव करते रहना। जीवन की निरन्तरता केवल स्थूल शरीर या वंशानुक्रम में निरन्तरता नहीं है, यह तो निरन्तरता का केवल वह एक पक्ष है, जिसके कारण मनुष्य अपने को अपनी पूर्ववर्ती तीन पीढ़ियों के साथ एक पिंड का भागीदार मानता है– पूर्ववर्ती ही नहीं, परवर्ती पीढ़ियों के साथ भी और वह अपने प्रत्येक अनुष्ठान में एक तो यह अनुभव करता है कि हम अपने पूर्ववर्तियों को (पितरों को) भाग दे रहे हैं, दूसरी ओर मन में यह आकांक्षा भी पालता है कि हमारी भागीदार सन्तान हमसे अधिक समृद्ध, अधिक बुद्धि-सम्पन्न, अधिक कर्म-सम्पन्न हो। इस प्रकार का अनुभव केवल इसीलिए अतीत से नहीं जोड़ता, न केवल भविष्यत् से जोड़ता है, वह वर्तमान का विस्तार करता चलता है। अतीत और अनागत को वर्तमान में आत्मभुक्त करता चलता है।

जीवन की निरन्तरता का दूसरा पक्ष सूक्ष्म शरीर की अविच्छिन्नता के अनुभव के रूप में उजागर होता है। सूक्ष्म शरीर का अनुभव स्थूल इन्द्रिय से नहीं होता। वह अनुभव उसी के स्तर की सूक्ष्म बुद्धि से होता है। सूक्ष्म बुद्धि निरन्तर अभ्यास से विकसित होती है, अभ्यास इस बात का कि हम यह सोचते रहें कि हम अनन्त काल और देश से जुड़े हुए हैं और अभ्यास यह सोचते रहने का कि किसी भी वस्तु के प्रति यदि हमारा आकर्षण होता है, चाहे वह वस्तु मनुष्य के रूप में सामने आए या प्रकृति के रूप में हो तो उसके पीछे एक चिरसंचित संस्कार प्रेरक है। ऐसा निरन्तर खोजते रहने से स्थूल और सूक्ष्म का विवेक इस स्तर का हो जाता है कि आदमी स्थूल आश्रय में रहते हुए भी उससे अलग अस्तित्व के बारे में सोच सकता है और सूक्ष्म शरीर की भावना करते-करते समष्टि सूक्ष्म के प्रवाह में उसे विसर्जित कर सकता है। जन्मान्तर का सिद्धान्त इस निरन्तरता के अनुभव का ही एक निष्कर्ष है। जन्मान्तर का अर्थ ही है, स्थूल शरीर के नाश को जीवन का अन्त न मानना।

अमृता प्रीतम

डॉ. दीपक पाण्डेय
सहायक निदेशक, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली-66
ईमेल –dkp410@gmail.com

भारतीय ज्ञानपीठ का वर्ष 1981 का साहित्य पुरस्कार श्रीमती अमृता प्रीतम को उनके काव्य संग्रह 'कागज़ के कैनवस' के लिए प्रदान किया गया। 'कागज़ के कैनवस' संकलन में अमृता प्रीतम की प्रतिनिधि कवितायें संगृहित हैं। इन कविताओं में सामाजिक यथार्थ के शिला-खण्डों से टकराते युग-मानव की व्यथा–कथा ही विशेष रूप से मुखरित हुई है। इन कविताओं में जो दृष्टिदर्शन यहाँ परिलक्षित होता है उसमें एक नया ही भाव-गाम्भीर्य है और है उसके समानांतर एक आन्तरिक विवेकपूर्णता। यहाँ उनकी प्रमुख चिंता लगती है कि कैसे अमानवता की ओर बढते मानव के चरण रुकें और कैसे विनाश से उसे बचाया जाये। संग्रह में कई कविताएँ गुरु नानक की पाँचवीं शतवार्षिकी से संबंधित हैं और कई दृष्टियों से बड़ी महत्त्व की मानी जाती हैं। उन्होंने इन रचनाओं में गुरु नानक देव जी का असामान्य मानवीय रूप प्रस्तुत किया है, दो अन्य नारीगत स्वाभाविक रूप भी उकेरे गये हैं: एक है माँ की मनोभावनाओं का जननी माँ की, सबकी जननी-धारिणी धरती माँ की, और निखिल सर्जना-शक्ति माँ की कल्पनाओं का। इस सन्दर्भ में अमृता प्रीतम ने मानव की दैवी संभावनाओं की परिकल्पना की है। दूसरी नारीगत भावनाओं का रूप जिनसे यहाँ साक्षात्कार कराया गया है वह है नानक देव जी की धर्मपत्नी की विरह पीड़ा का। अमृता प्रीतम की काव्य- कला कुशलता का प्रत्यक्ष परिचय उन रचनाओं और रचना-पंक्तियों में मिलता है जहाँ वे चुन-चुनकर अन्तरतम की भाव-दीप्तियों तक को आँखों के आगे सम्मूर्त करती है, और करती हैं यह लोकजीवन से लिये हुए बिम्बों के सहारे। ऊपर से विशेषता यह कि ये बिम्ब भी व्यक्ति-जीवन के नहीं होते, लोकजीवन के अवचेतन स्तर से चुनकर लिए हुए होते हैं। इस संग्रह की एक कविता 'विश्वास' की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

एक अफवाह बड़ी काली
एक चमगादड़ की तरह मेरे कमरे में आई है
दीवारों से टकराती
और दरारें, सुराख और सुराग ढूंढने
आँखों की काली गलियाँ
मैंने हाथों से ढक ली हैं
और तेरे इश्क़ की मैंने कानों में रुई लगा ली है।

प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार श्री कुलदीप नैयर ने लिखा है– "अमृता प्रीतम एक ऐसी लेखिका थीं जिन्होंने अपनी लेखनी से समाज के दिल की धड़कन को छुआ। उनकी कविताओं और उपन्यासों में समाज की सच्चाइयाँ और मानवता का गहरा चित्रण मिलता है।" यही कारण है कि अमृता प्रीतम के साहित्य का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है और प्रतिष्ठित हुआ।

अमृता प्रीतम का जन्म पंजाब के गुजराँवाला जिले (जो अब पाकिस्तान में है) में 31 अगस्त, 1919 को सिख परिवार में हुआ था। अमृता कौर के पिता करतार सिंह सम्मानित व्यक्ति होने के साथ ही खाली समय में प्रचारक के रूप में सेवा किया करते थे। महज 11 साल की उम्र में अमृता की माँ राज बीबी का निधन हो गया और वे पिता के साथ लाहौर चली गईं। माँ की मौत के बाद अमृता कौर ने भगवान पर विश्वास खो दिया था। वहीं लाहौर में वह महज 11-12 साल की उम्र से कविताएँ लिखने लगीं और लेखन से उन्हें सुकून मिलने लगा। साल 1936 में महज 17 साल की उम्र से अमृता कौर का 'अमृत लहरें' नामक कविता संकलन प्रकाशित हुआ। लाहौर के एक धनी व्यापारी के बेटे प्रीतम सिंह से अमृता की 1935 में शादी हो गई। लेकिन शादी के बाद अमृता कौर के अपने पति से संबंध अच्छे नहीं रहे। जिसके बाद साल 1960 में दोनों अलग हो गए। लेकिन अमृता ने अपने पति का नाम हमेशा के लिए अपना लिया और उन्होंने अपना नाम अमृता प्रीतम कर लिया। 1947 के भारत-पाकिस्तान

विभाजन के समय अमृता प्रीतम लाहौर से देहरादून आ गई। उनके शुरुआती दिन देहरादून में बीते फिर वह कुछ समय बाद दिल्ली आ गई। यहाँ वे ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली केंद्र से जुड़ गई। उनके व्यक्तित्व पर विभाजन का बहुत गहरा असर पड़ा। उन्होंने मुल्क के बँटवारे के समय की विभीषिकाएँ, विस्थापन का दर्द, दंगे, हत्याएँ और बलात्कार देखे थे। इस दर्दनाक मंजर को देखने के बाद उन्होंने अपनी कविता **"अज्ज अक्खां वारिस शाह नूं"** लिखी जो दोनों ही मुल्कों में रहने वाले लोगों का दर्द बयां करती हैं। इस कविता ने अमृता प्रीतम को भारत और पाकिस्तान में लोकप्रिय बना दिया था।

अमृता प्रीतम की साहिर लुधियानवी से मुलाकात हुई। साहिर भी कवि थे और बाद में प्रसिद्ध गीतकार भी बने। दोनों एक दूसरे का पसंद करते थे पर धर्म की दीवार ने इन्हें एक नहीं होने दिया। साहिर लुधियानवी को अमृता प्रीतम आखिरी सांस तक नहीं भूल पाईं। अमृता के जीवन में एक और कलाकार व लेखक इमरोज से मुलाकात हुई और जिस जमाने में लोग प्रेम विवाह करने में आगे नहीं आते थे, उस जमाने में अमृता प्रीतम ने इमरोज के साथ लिव इन में रहना शुरू कर दिया था और अंतिम समय तक उनके साथ रहीं। कला और साहित्य में अद्‌भुत योगदान देने वाली अमृता प्रीतम का 31 अक्तूबर, 2005 को निधन हो गया।

पुरस्कार :

साहित्य अकादमी पुरस्कार (1956)
पद्मश्री (1969)
डॉक्टर ऑफ़ लिटरेचर (दिल्ली युनिवर्सिटी-1973)
डॉक्टर ऑफ़ लिटरेचर (जबलपुर युनिवर्सिटी-1973)
बल्गारिया वैरोव पुरस्कार (बुल्गारिया-1988)
भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार (1981)
डॉक्टर ऑफ़ लिटरेचर (विश्व भारती शांतिनिकेतन-1987)
फ्रांस सरकार द्वारा सम्मान (1987)
पद्म विभूषण (2004)

रचनाएँ :

उपन्यास–डॉक्टर देव, पिंजर, आह्लणा, आशू, इक सिनोही, बुलावा, बंद दरवाज़ा, रंग दा पत्ता, इक सी अनीता, धरती सागर ते सीपियाँ, दिल्ली दियाँ गलियाँ, एकते एरियल, जलावतन, यात्री, जेबकतरे, अग दा बूटा, पक्की हवेली, अग दी लकीर, कच्ची सड़क, कोई नहीं जानदाँ, उनहाँ दी कहानी, इह सच है, दूसरी मंज़िल, तेहरवाँ सूरज, उनींजा दिन, कोरे कागज़, हरदत्त दा ज़िंदगीनामा

कहानी संग्रह –हीरे दी कनी, लातियाँ दी छोकरी, पंज वरा लंबी सड़क, इक शहर दी मौत, तीसरी औरत

कविता संग्रह– लोक पीड़, मैं जमा तू, लामियाँ वतन, कस्तूरी, सुनहुड़े, कागज़ ते कैनवस सहित 18 कविता संग्रह

आत्मकथा– रसीदी टिकट

संस्मरण– कच्चा आंगन, एक थी सारा

गद्य कृतियाँ– किरमिची लकीरें, काला गुलाब, अग दियाँ लकीराँ, इकी पत्तियाँ दा गुलाब, सफ़रनामा, औरतः इक दृष्टिकोण, इक उदास किताब, अपने-अपने चार वरे, केड़ी ज़िंदगी केड़ा साहित्य, कच्चे अखर, इक हथ मेहन्दी इक हथ छल्ला, मुहब्बतनामा, मेरे काल मुकट समकाली, शौक़ सुरेही, कड़ी धुप्प दा सफ़र, अज्ज दे काफ़िर

अभिभाषण के अंश–लगता है सारी जिंदगी जो भी सोचती रही, लिखती रही, वह सब शायद देवताओं को जगाने का ही एक प्रयत्न था–उन देवताओं को जो इनसान के भीतर सो गये हैं।

क्यों लिखती हूँ मैं? मेरी नज़र में यह मैं से आगे मैं तक पहुँचने की एक यात्रा है। यात्रा-उस "मैं" तक पहुँचने की जिसमें सबसे पहले 'मैं' की पहचान जमा होती है, फिर 'तू' की, और उसके बाद 'वह' की पहचानः यानी दुनिया जमा होती है। यही वह जगह है– जहाँ गैर-से-गैर दर्द भी अपना हो जाता है। इसीलिए एहसास की शिद्दत, अनुभूति की सघनता, 'मैं' का सहज कर्म हो जाता है। एक फूल की महक-सा सहज धर्म। यही वह जगह है जहाँ, यथार्थ की हदों से परे की कल्पना भी यथार्थ की हदों में आ जाती है। और यही वह जगह है, वह बिंदु है, जहाँ एक लेखक का चिन्तन पाठक का अपना चिन्तन बन जाता है, जो यथार्थ पाठक के लिए आखिरी यथार्थ या वह आखिरी नहीं रहता। सचाई यह कि एक असम्भव उसके सम्भव की हद में आ जाता है।

पहले वक्तों में लोग बच्चे की पैदाइश के वक्त होने वाली माँ की कोठरी में एक कोरा कागज और कलम-दवात रख दिया करते थे। और घर का बुजुर्ग उस कोरे कागज के पास खड़े होकर दुआ माँगा करता था 'विद्या माता, बच्चे के जनम के वक्त जब यहाँ तुम आओगी तो बच्चे की अच्छी-सी तकदीर लिख जाना।' कितना बड़ा विश्वास था यह इनसान का। कागज पर लिखे हुए अक्षरों में विश्वास। और लिखे हुए अक्षरों के लिए यही सम्मान का भाव, यही अक्षरों में विश्वास बना लेखक और पाठक का कदीमी रिश्ता। और मेरी नजर में तो लेखक सही मायनों में तभी लेखक है जब विद्या माता की तरह उसमें इनसान के चिन्तन की तकदीर लिखने की शक्ति हो।

ऑस्ट्रेलिया के आदिवासियों में एक कहानी चलती है कि पुराने वक्तों में आसमान बहुत नीचा हुआ करता था। इतना नीचा कि धरती का इनसान सिर उठाकर नहीं चल सकता था। तब धरती पर इतना अँधेरा भी रहता था कि खाने के लिए इनसान को हाथों से टटोल-टटोलकर जड़ी-बूटियाँ खोजनी पड़ती थीं। तब पंछियों को यह ख़याल आया कि अगर किसी तरह आसमान को धकेलकर कुछ ऊँचा कर दिया जाये तो धरती के इनसान धरती पर सिर उठाकर चल सकेंगे। और कहते हैं पंछियों ने लंबे-लंबे तिनके इकट्ठे किये और अपना पूरा जोर लगाकर आसमान को ऊपर उठाना शुरू किया। और, आसमान सचमुच ऊपर उठ गया और लोग, जो घुटनों के बल चलते थे, सिर उठाकर खड़े हो गये, चलने लगे। साथ ही, आसमान के पीछे छिपा हुआ सूरज अब सामने आ गया और समूची धरती रोशन हो गयी।

यह कहानी पुराने वक्तों की होते हुए भी, मेरी नजर में हर काल की कहानी है, हर क्षेत्र की कहानी है–बेशक अपने-अपने अर्थों में। पंछी-रुह वाले इनसान अपने जतन से, इनसानी रिश्तों के अँधेरे जंगल में भी अपना आसमान ऊँचा उठाकर अपने लिए सूरज की रोशनी

खोज लेते हैं। और मैं तो सोचती हूँ कि हर समाज, हर मजहब, और हर सियासत के अँधेरे में जहाँ और जितनी बार रोशनी दिखायी देती है, वह उन कुछेक लोगों की ही वजह से है जिन्होंने अपने जतन से कहीं-कहीं अपना आसमान ऊँचा किया है। लेखन की धरती पर तो, सचमुच कुछ लेखक होते ही हैं–पंछी-रुह जैसे-और उनकी कलमें ही वह तिनके होती हैं जिनके जोर से वे आसमान को ऊँचा उठाकर इनसान का सिर ऊँचा कर देते हैं।

अपनी कलम के बारे में तो सिर्फ इतना ही कह सकती हूँ कि इसने दुनिया की कुछ उन कलमों का साथ दिया है जो आसमान को ऊँचा करने में यकीन रखती हैं। यहाँ एक घटना का जिक्र करना चाहूँगी। एक दिन अचानक एक अजनबी मिलने आया। भारतीय ज्ञानपीठ के इस एवार्ड की खबर पाने के बाद। और, उस अजनबी की आँखों में पानी था, और हाथ में बोड़ी-सी मिट्टी। कहा उसने इतना ही–"यह उस घरती की मिट्टी लाया हूँ, गुजराँवाला की, जहाँ तुम पैदा हुई थीं..." मैं भरी-भरी आँखों देखती रह गयी। मिट्टी का धर्म सचमुच कितना बड़ा होता है। कौन समझेगा कि जिन मजहबों की बुनियाद पर धरती के टुकड़े कर दिये जाते हैं, वे मज़हब इसके सामने कितने छोटे हैं। इनसान के दिल की खूबसूरती, उसके मन की महक मिट्टी का धर्म होती है और धर्म की आत्मा को तो किसी मजहब ने अभी तक पहचाना नहीं। यही मिट्टी का दिया हुआ उपजाऊ धर्म अच्छे इनसानों का धर्म होता है, अच्छे अदीबों का, साहित्यकारों का धर्म।

हर कलम के सामने उसकी भाषा का एक सीमित दायरा होता है। हिन्दुस्तान में तो खासकर। यहाँ बहुत-सी भाषाओं ने चिंतन को छोटे-छोटे दायरों में बाँटा हुआ है। भारतीय ज्ञानपीठ की सबसे बडी अहमियत यह है कि उसने भाषाओं की इन छोटी-छोटी नदियों को एक बहुत बड़ी नाव से जोड़ दिया है। पूरे हिन्दुस्तान की कला और चिन्तन की महानदी से।

किसी भी अदीब के लिए आर्थिक स्वतन्त्रता एक बहुत बड़ा मसला होता है। इस पहलू से भी भारतीय ज्ञानपीठ की अहमियत से इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन एक और पहलू है, बहुत बड़ा पहलू, कि कोई अदीब लिखता है तो किन कदों के लिए, किन मूल्यों के लिए। अदीब नैतिक मूल्यों को, उनके सतही और सिमटे हुए दायरों से निकालकर, गहरे और रूहानी अर्थों तक उठा ले जाने की जद्दोजहद करता है। इस जद्दोजहद में उसे समाज का कड़ा विरोध झेलना पड़ता है। भारतीय ज्ञानपीठ का यह कदम उस तमाम विरोध की नजर में भी जिंदगी के व्यापक अर्थों को पहचानने की एक सम्भावना पैदा कर देता है। और यह सचमुच एक बहुत बड़ी बात है।

आग की लपट को बहुत से लोग चिमटे से पकड़ने की कोशिश करते हैं। रिवायतों और संस्कारों के चिमटे से। बहुत से आलोचक भी उस लपट को किसी न किसी 'वाद' के चिमटे से पकड़ने का जतन करते हैं और फिर खीज उठते हैं कि वह लपट चिमटे की पकड़ में नहीं आती। उस आग की लपट को, सचमुच पकड़ा जा सकता है तो सिर्फ आग की लपट से ही। इसलिए कहना चाहूँगी उन सबसे, जो भारतीय ज्ञानपीठ और ज्ञानपीठ एवार्ड से सम्बद्ध हैं, कि आपकी नज़र को वह नज़रिया मुबारक जो हिन्दुस्तान की साहित्यिक जन-चेतना को लोगों के पास तक पहुँचाने का बहुत बड़ा माध्यम बना है।

जिंदगी के एक मुश्किल वक़्त में मैंने एक नज्म लिखी थी–

आज मैंने एक दुनिया बेच दी
और दीन खरीद लिया–
बात कुफ की कर दी
सुपनों का एक थान बुना था
गज एक कपड़ा फाड़ लिया–
और जिंदगी की चौली सी ली
आज मैंने आसमान के घड़े से
बादल का उकना उठाया–
और घूँट चाँदनी पी ली
गीतों से चुका जाऊँगी
यह जो मैंने मौत से–
एक घड़ी कर्ज ले ली।

सिर्फ मुश्किल वक़्त नाजुक नहीं होता। अचानक ही कहीं से इतनी पहचान मिले, इतना प्यार मिले तो ऐसा वक्त भी उतना ही नाजुक होता है। इसलिए आज भी कहना चाहूँगी–

गीत मेरे
कर दे मेरे इश्क का
कर्ज अदा कि
तेरी हर एक सतर से
आये जमाने की सदा।

संदर्भ : ज्ञानपीठ पुरस्कार : बिशन टंडन

पद्म पुरस्कारों से सम्मानित प्रवासी भारतीय अमरीकी /कनाडाई

1. विनोद धाम

2. अजय भट्ट

3. नितिन नोहरिया

4. स्टीफन नैप (भारतीय संस्कृति प्रेमी मरणोपरांत)

5. सेतुरामन पंचनाथन

6. अरविन्द शर्मा धर्म-दर्शन पर अध्यापन और लेखन (कनाडा)

हलचल

सार्थक कोशिश

भारत सरकार ने हिन्दी में विज्ञान शिक्षण के लिए अपनी विभिन्न ग्रंथ अकादमियों के माध्यम से पुस्तकों का प्रकाशन शुरू किया है। अभी जयपुर पुस्तक मेले में डॉ. श्रीधर शर्मा की पादप शास्त्र की इस पुस्तक का लोकार्पण किया गया।

मणिपुर हिन्दी परिषद् इंफाल

डॉ. अमरनाथ

लेखक कलकत्ता विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष है। सम्पर्क–ईई-164/402, सेक्टर-2, साल्टलेक, कोलकाता-700091 ईमेल: amarnath.cu@gmail.com मो. 9433009898

मणिपुर विश्वविद्यालय की एक चयन समिति में हिस्सा लेने के लिए वर्ष 2007 में इंफाल गया था, उन दिनों इबोहल सिंह काङ्जम हिन्दी विभाग में प्रोफेसर थे और प्रो. देवराज विभागाध्यक्ष। दोनों में गहरी आत्मीयता थी। इन दोनों मनीषियों के साथ मैंने मणिपुर हिन्दी परिषद् के भवन में प्रवेश करके जिस गौरव का अनुभव किया था वैसा अनुभव देश की किसी भी दूसरी संस्था के भवन में प्रवेश करते हुए नहीं हुआ था। मणिपुर हिन्दी परिषद् का शानदार भवन, असेंबली रोड पर विधान सभा के ठीक सामने स्थित है। बाद में विधान सभा को इंफाल नगर के ही उत्तर-पूर्वी सीमांत पर एक नए भवन का निर्माण करके, वहाँ ले जाया गया, लेकिन मणिपुर हिन्दी परिषद् अपने उसी स्थान पर है। परिषद्-भवन के भीतर सुसज्जित सभा-कक्ष, शानदार पुस्तकालय, संपादक-कक्ष, परीक्षा-कक्ष और प्रशासनिक-कार्यालय के साथ कई अन्य कमरे हैं। मुख्य भवन के पीछे परिषद् द्वारा संचालित मणिपुर हिन्दी महाविद्यालय के लिए कमरे बने हैं। उस समय परिषद् के सभागार में मेरा एक व्याख्यान भी हुआ और बाद परिषद् के सदस्यों ने भवन के भीतर का विस्तृत दर्शन कराया।

दूसरे राज्यों की तरह ही मणिपुर में भी हिन्दी के प्रचार के लिए कई संस्थाएँ आजादी से पहले ही सक्रिय हो गयी थीं। सबसे पहले, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने तीसरे दशक में इंफाल जेल में हिन्दी पढ़ने में रुचि लेने वाले कैदियों के लिए एक परीक्षा-केन्द्र चलाया था। राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा की मणिपुर राज्य इकाई चौथे दशक में स्थापित हो गई थी। इस तरह हिन्दी के प्रचार-प्रसार का कार्य सामान्य तौर पर होने लगा था। मणिपुर राज्य में कार्यरत हिन्दी प्रचार संस्थाओं में मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति इंफाल, मणिपुर हिन्दी प्रचार सभा, नागरी लिपि प्रचार सभा, नागा हिन्दी विद्यापीठ, मणिपुर ट्राइबल्स हिन्दी सेवा समिति, लोकमंगल विद्यापीठ आदि प्रमुख हैं।

व्यक्तिगत स्तर पर मणिपुर में हिन्दी प्रचार आन्दोलन का आरंभ करने वालों में थोकचोम मधु सिंह, पं. ललितामाधव शर्मा, अरिबम पं. राधामोहन शर्मा, बंकबिहारी शर्मा, कैशाम कुंजबिहारी सिंह आदि प्रमुख हैं। अरिबम राधामोहन शर्मा के प्रयास से ही मणिपुर का पहला हिन्दी विद्यालय खुला था। सन् 1933 में स्थापित इस विद्यालय का नाम था "भैरोदान हिन्दी स्कूल"। इसके पूर्व थोकजोम मधु सिंह ने अपने घर में एक हिन्दी विद्यालय का श्रीगणेश किया था। इसी तरह 1949 में कैशाम कुंजबिहारी सिंह ने पहली बार मणिपुरी भाषा के लिए नागरी लिपि का प्रयोग करके तथा नागरी को 'राष्ट्रलिपि' नाम देकर ऐतिहासिक काम किया था। ऐसा उन्होंने अपने संपादन में प्रकाशित 'ङसि' नामक समाचार पत्र के माध्यम से किया था। उन्होंने "राष्ट्रलिपि स्कूल" नाम से एक प्राथमिक हिन्दी शिक्षण-संस्था की स्थापना भी की थी, जो आज मणिपुर सरकार के नियंत्रण में हाई स्कूल स्तरीय संस्था के रूप में चल रही है।

निस्संदेह प्रदेश ही नहीं, देश की भी दूसरी हिन्दी संस्थाओं की तुलना में मणिपुर हिन्दी परिषद् नया है। इसकी स्थापना 7 जून 1953 को हुई थी। उस समय तक मणिपुर को स्वतंत्र राज्य का दर्जा नहीं मिला था। उन दिनों मणिपुर का प्रशासन राष्ट्रपति के अधीन था और चीफ कमिश्नर के रूप में राष्ट्रपति का प्रतिनिधि शासन का काम सँभालता था।

फिलहाल, यहाँ के लोगों का हिन्दी से परिचय 18वीं शताब्दी में ही भक्ति-आन्दोलन के संपर्क में आने के साथ ही हो गया था। प्रो. देवराज के शब्दों में, "18वीं शताब्दी में वैष्णव-पदावली (ब्रजबुलि पदों के नाम से) मणिपुर के मंदिरों में गायी जाने लगी थी। इसे चैतन्य महाप्रभु के शिष्य वैष्णव धर्म के संदेश के साथ लेकर मणिपुर पहुँचे थे। इन भक्तों की चार विशेषताएँ थीं। एक– राधा-कृष्ण की सरस और मोहक लीलाओं को संगीतमय बनाकर आकर्षक रूप में प्रस्तुत करना, दो– बिना किसी विरोध को जन्म दिये स्थानीय जनता के मन में भक्ति व प्रेम की स्थापना करना, तीन– मणिपुर के लौकिक वातावरण को स्वीकार करके भक्ति को पढ़े-बे-पढ़े सबके लिए सुलभ बनाना और चार- समूह गान की परंपरा। धीरे-धीरे वैष्णव मत का प्रचार-प्रसार बढ़ने लगा। गाँव-गाँव, घर-घर मंदिर बनाये जाने लगे और कीर्तन की ध्वनि गूँजने लगी। अक्टूबर सन् 1703 में मणिपुर के राजा पितांबर सिंह (चराइरोङ्बा) वैष्णव मत में दीक्षित हो गये। इससे राधा-कृष्ण और उनके माध्यम से भारत की वैष्णवी सांस्कृतिक धारा इस राज्य में बहने लगी।" (उदधृत, हिन्दी को मणिपुर की देन, अरिबम ब्रजकुमार शर्मा, पृष्ठ-20)

वैष्णव मत के प्रचार के चलते मणिपुर के लोगों का तीर्थ यात्रियों

के रूप में नवद्वीप, हरिद्वार, काशी, प्रयाग आदि तीर्थ स्थानों पर आना-जाना शुरू हुआ जिसके फलस्वरूप ब्रजभाषा तथा हिन्दी की अन्य बोलियों के संपर्क में वे आने लगे।

प्रो. देवराज ने लिखा है, " प्राचीन काल से ही अपने बल पर और राजाओं से छात्रवृत्ति प्राप्त करके मणिपुर के ब्राह्मण बालक संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने नवद्वीप व काशी जैसे धार्मिक-सांस्कृतिक स्थानों में जाया करते थे। इनमें से काशी के हिन्दी के वातावरण से घिरे होने के कारण संस्कृत के साथ हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेना उनके लिए बड़ा सहज था। इनमें से अनेक पौरोहित्य कर्म के साथ सक्रिय रूप से हिन्दी के प्रचार में जुट जाते थे। यहाँ लौटने के बाद कुछ लोग हिन्दी का व्यवस्थित शिक्षण भी आरंभ कर देते थे। इनके पूजा-पाठ में भी संस्कृत और मणिपुरी के साथ हिन्दी का पर्याप्त अंश होना स्वाभाविक था। मणिपुर में ब्राह्मणों में घर के मंदिर और उसके सामने बड़ा सा चौकोर बैठका बनवाने की प्राचीन परंपरा आज भी मिलती है। भगवान के दर्शन के बाद भक्त लोग इसमें इकट्ठे होते थे और एक निश्चित समय पर पुजारी इन्हें उपदेश करते थे। उपदेश की मुख्य भाषा मणिपुरी होती थी और बीच-बीच में प्रसंग पड़ने पर हिन्दी का प्रयोग होता था। कीर्तन का माध्यम ब्रजबुलि की भाषा थी ही। इससे हिन्दी मणिपुर में बढ़ी। इस प्रकार प्राचीन काल में हिन्दी, धर्म तथा संस्कृत भाषा के साथ इस क्षेत्र में आयी।" (संकल्प और साधना, भूमिका भाग)

मणिपुर हिन्दी परिषद् की स्थापना से मणिपुर में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में गुणात्मक विकास हुआ। स्थापना के समय श्री एल. भागवतदेव शर्मा को अध्यक्ष तथा लाइमयुम मणिस्ना शर्मा शास्त्री को प्रधान सचिव चुना गया। एक वर्ष बाद ही यानी, सन् 1954 में भागवतदेव शर्मा प्रधान सचिव बने और श्री लाइश्रम योगेश्वर सिंह को अध्यक्ष बनाया गया। सन् 1956 में मणिपुर राज्य में शिक्षा-प्रसार के मूल स्तंभ पं. द्विजमणि देव शर्मा मणिपुर हिन्दी परिषद् के अध्यक्ष बनाये गये।

मणिपुर हिन्दी परिषद् की स्थापना के कुछ दिनों बाद ही परिषद् के परीक्षा सचिव अरिबम पं. राधामोहन शर्मा के सुझाव पर महिप ने हिन्दी की विभिन्न परीक्षाओं के संचालन का कार्य आरंभ किया। परीक्षा सचिव का दायित्व राधामोहन शर्मा ने ही संभाला। उन दिनों वे भैरोदान हिन्दी स्कूल में शिक्षक थे। शिक्षण कार्य करते हुए महिप की परीक्षाओं के संचालन का दायित्व आसान नहीं था। इसके बावजूद वे पूरी निष्ठा से पूरे छब्बीस साल तक महिप के परीक्षा सचिव का दायित्व निभाते रहे। उनके कार्यकाल में महिप ने स्वतंत्र पाठ्यक्रम निर्मित किये और उसके अनुसार पाठ्य-सामग्री का निर्माण किया। इस पाठ्य-सामग्री की विशेषता यह थी कि भाषा-शिक्षण, व्याकरण, पाठ्य-विषय आदि की सामग्री मणिपुरी छात्रों की समस्याओं एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निर्मित की गयी थी। महिप की ये पाठ्य-पुस्तकें अपने गुणों के कारण मणिपुर सरकार द्वारा सरकारी स्कूलों के लिये भी स्वीकार की गयीं।

मणिपुर हिन्दी परिषद् का रजिस्ट्रेशन (पंजी. सं. 10, 1958-59) सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट 1860 के अंतर्गत हुआ है। जिन दिनों महिप का रजिस्ट्रेशन हुआ, उन दिनों मणिपुर के प्रतिष्ठित समाजसेवी और राजनीतिज्ञ पं. ललितामाधव शर्मा भी महिप से जुड़े। वे तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के घनिष्ठ मित्रों में थे। वे सांसद थे और मणिपुर संबंधी मामलो में उनकी राय पं. नेहरू के लिए खास महत्व रखती थी। परिणाम यह हुआ कि पं. ललितामाधव शर्मा के माध्यम से मणिपुर सरकार ने महिप को एक भूमि खंड प्रदान किया। जैसा कि मैंने ऊपर संकेत किया है महिप का वर्तमान मुख्यालय भवन उसी भूमि खंड पर मणिपुर विधान सभा के ठीक सामने निर्मित किया गया।

मणिपुर हिन्दी परिषद् के कार्यों एवं योजनाओं का संचालन इसके संविधान में उल्लिखित व्यवस्था के अनुसार होता है। इसकी एक साधारण सभा है जिसमें मानद सदस्य, संरक्षक सदस्य, आजीवन सदस्य, साधारण सदस्य और संस्था द्वारा संचालित शिक्षा-केन्द्रों के प्रतिनिधि होते हैं। इसके प्रशासन का मुखिया प्रधान सचिव होता है। वह कार्यपालिका के सदस्यों की सहायता से प्रशासनिक नियंत्रण के साथ ही प्रत्येक संबंधित विभाग की गतिविधियों पर नियंत्रण रखता है। महिप का परीक्षा विभाग है जो परीक्षा सचिव के नियंत्रण में कार्य करता है। यह 'हिन्दी प्रारंभिक', 'हिन्दी प्रवेश', 'हिन्दी परिचय', 'हिन्दी प्रबोध', 'हिन्दी विशारद' और 'हिन्दी रत्न' जैसे प्रमाण-पत्रों एवं उपाधियों के लिए परीक्षाएँ आयोजित करता है। पाठ्यक्रम व पाठ्य- सामग्री निर्माण का कार्य भी इसी विभाग के जिम्मे है। महिप का एक प्रचार विभाग भी है जो प्रचार सचिव के नियंत्रण में कार्य करता है। इसका मुख्य कार्य है, महिप द्वारा संचालित तथा नियंत्रित विद्यालयों तथा महाविद्यालयों और विभिन्न केन्द्रों पर संचालित होने वाली प्रचार-शाखाओं की निगरानी करना, प्रचार-कार्य संपन्न करना, प्रचार-योजनाएँ बनाना और हिन्दी के प्रचार के लिए कार्यक्रम आयोजित करना। साहित्य विभाग साहित्य-सचिव के नियंत्रण में रहता है। इसी विभाग के नियंत्रण में महिप का समृद्ध पुस्तकालय भी है। इसी तरह महिप का एक वित्त विभाग है जिसके जिम्मे वित्त का दायित्व होता है और एक पत्रिका-प्रकाशन विभाग है जिसके नियंत्रण में साहित्य के प्रकाशन का दायित्व है। इसी विभाग की ओर से 'मणिपुर हिन्दी परिषद् पत्रिका' प्रकाशित होती है। इसी विभाग की ओर से अन्य साहित्यिक कृतियों का भी प्रकाशन होता है। पहले यह विभाग साहित्य विभाग के नियंत्रण में ही कार्य करता था। सन् 1998 में हुई संविधान पुनरीक्षण समिति की बैठक में इसे स्वतंत्र विभाग का दर्जा प्रदान किया गया।

'मणिपुर हिन्दी परिषद् पत्रिका' का प्रकाशन सन् 1985 से हो रहा है। आरंभ में यह पत्रिका श्री राधागोविन्द थोङाम के संपादन में प्रतिमाह निकलती थी। इस पत्रिका का उद्देश्य केवल हिन्दी का प्रचार ही नहीं था, बल्कि इसे साहित्यिक विरासत को सँजोने के महान लक्ष्य से जोड़ा गया था। थोड़े ही समय में इस पत्रिका ने हिन्दी और मणिपुरी साहित्य का महत्वपूर्ण परिचय पाठकों को उपलब्ध करा दिया तथा अनेक विशेषांक प्रकाशित किये। इसके मैथिलीशरण गुप्त, तुलसी, नीलवीर शास्त्री, ख्वाइराक्पम चाओबा आदि पर केन्द्रित विशेषांक काफी चर्चित हुए। आजकल यह 'महिप पत्रिका' नाम से त्रैमासिक

निकल रही है। इधर कुछ वर्षों से अनियमित हो गयी है।

मणिपुर हिन्दी परिषद् ने हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास एवं प्रचार-प्रसार की दिशा में ऐतिहासिक भूमिका निभायी है। सन् 1988 में महिप ने एक ऐसे वार्षिक कवि-सम्मेलन की नींव डाली जिसमें केवल हिन्दीतर भाषी हिन्दी कवि ही भाग लेते थे। इसकी योजना प्रो. देवराज ने तैयार की थी। जिन कवियों ने सबसे पहले कवि- सम्मेलन में भाग लिया था उनकी रचनाएँ देवनागरी लिपि में मणिपुरी अनुवाद सहित 'मीतै चनु' नाम से प्रकाशित की गयी थीं। कवि-सम्मेलन प्रतिवर्ष गणतंत्र दिवस के अवसर पर संपन्न होता था। अब वह परंपरा नियमित नहीं रह गयी है।

मणिपुर हिन्दी परिषद् अपने सदस्य कार्यकर्ताओं के माध्यम से मणिपुरी साहित्य का हिन्दी अनुवाद निरंतर कराती रहती है और उसे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन हेतु उपलब्ध कराती रहती है। 'समकालीन भारतीय साहित्य' व 'उन्नयन' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के मणिपुरी साहित्य पर केन्द्रित अंकों की सामग्री महिप के सदस्यों ने ही उपलब्ध करायी थी। उल्लेखनीय है कि महिप के प्रथम परीक्षा मंत्री पं. राधामोहन शर्मा ने हिन्दी-मणिपुरी शब्दकोश निर्मित किया था जिसका महत्व आज भी बना हुआ है। कवि चाओबा के जीवन और साहित्य पर केन्द्रित ग्रंथ का प्रकाशन महिप के साहित्य विभाग की एक अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

परिषद् का भवन इंफाल नगर के बीचोबीच असेंबली रोड पर है, इसलिए यहाँ लोगों को पहुँचने में बड़ी सुविधा होती है। यही कारण है कि परिषद् भवन हमेशा से साहित्यकारों के बैठने और विचार-विमर्श का एक महत्वपूर्ण और सर्वसुलभ केन्द्र बना हुआ है। आज भी मणिपुरी साहित्य के विकास में संलग्न शहर की दूसरी संस्थाओं के आयोजन भी अधिकतर महिप के सभा-भवन में ही संपन्न होते हैं। मणिपुरी लिटरेरी सोसाइटी के कार्यालय के लिए महिप ने अपने भवन में ही जगह दी है। मणिपुरी भाषा को भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में जगह दिलाने के लिए जो आन्दोलन फूट पड़ा था, उसमें भी इस संस्था का ऐतिहासिक योगदान रहा था। मणिपुर हिन्दी परिषद् के ये सभी कार्य हिन्दी और मणिपुरी भाषाओं के बीच संबंध-सेतु बनाने के साथ-साथ उस राज्य में हिन्दी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने वाले रहे हैं।

इन दिनों भी मणिपुर हिन्दी परिषद् इंफाल से संबद्ध बत्तीस हिन्दी महाविद्यालय और अट्ठारह विद्यालय हैं जहाँ परिषद् द्वारा नियोजित पाठ्यक्रम के अनुसार हिन्दी-शिक्षण कार्य नियमित रूप से चल रहा है। यद्यपि वैश्वीकरण के बाद शिक्षा के निजीकरण तथा हिन्दी की उपेक्षा का प्रतिकूल प्रभाव मणिपुर हिन्दी परिषद् पर भी पड़ा है और परिषद् द्वारा दी जाने वाली उपाधियों और प्रमाण-पत्रों के प्रति विद्यार्थियों की रुचि घटी है। इसका असर छात्र-संख्या पर पड़ना स्वाभाविक है।

मणिपुर हिन्दी परिषद् के वर्तमान प्रधान सचिव डॉ. अरिबम ब्रजकुमार शर्मा ने एक बातचीत में मुझे बताया कि किन्हीं दूसरे विषयों में भी स्नातक की उपाधि प्राप्त विद्यार्थी यदि महिप से 'हिन्दी रत्न' की उपाधि प्राप्त कर लेते हैं तो उन्हें मणिपुर विश्वविद्यालय में एम.ए.

(हिन्दी) में प्रवेश पाने के योग्य मान लिया जाता है। इन कारणों से महिप द्वारा संचालित परीक्षाओं में बहुत से विद्यार्थी आज भी शामिल होते हैं। इनसे मिलने वाले शुल्क से ही परिषद् का दैनिक खर्च चल रहा है। सरकार द्वारा मिलने वाला अनुदान लगभग बंद है। सन् 2016 के बाद 2021 में कुछ अनुदान मिला था जो ऊँट के मुँह में जीरा जैसा था। अब पहले की तुलना में बहुत थोड़े कर्मचारी बचे हैं। उन्हें भी हम जीवन यापन करने लायक वेतन नहीं दे पा रहे हैं। सेवा-निवृत हिन्दी शिक्षक और सरकारी स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षक जब वहाँ से छुट्टी पाते हैं तो हमारे बच्चों को भी हिन्दी पढ़ा देने की अनुकंपा करते हैं, किन्तु अब समय बहुत बदल गया है। नयी पीढ़ी के लोग बिना पैसे के कुछ भी सहयोग करने को तैयार नहीं होते हैं। जो पुराने लोग हैं वे निःस्वार्थ भाव से यथासंभव परिषद् को गति देने का प्रयास कर रहे हैं।

इन दिनों परिषद् के अध्यक्ष श्री रामनाथ प्रसाद जी हैं, जिनकी उम्र 89 वर्ष है। उपाध्यक्ष सह साहित्य सचिव प्रो. इबोहल सिंह काङ्जम हैं जिनकी उम्र 79 वर्ष है। काङ्जम जी कई पुस्तकों के लेखक हैं किन्तु शरीर से बहुत कमजोर हो चुके हैं। इन लोगों की जगह लेने को कोई दूसरा सुयोग्य व्यक्ति तैयार नहीं है। अन्य पदाधिकारियों में परीक्षा सचिव डॉ. सुरेन्द्र, प्रचार सचिव एच. मोचा सिंह तथा वित्त सचिव गोशाई शर्मा हैं। पिछले दिनों मणिपुर में शुरू हुई जातीय हिंसा ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार को और अधिक बाधित किया है। यदि सरकार द्वारा इस संस्था को नियमित रूप से कुछ अनुदान मिलता रहता तो आज भी मणिपुर में हिन्दी का ध्वज लहराता रहता। उल्लेखनीय है कि मणिपुर में गाँधी जी हिन्दी-प्रचार के लिए कभी नहीं गये और यहाँ हिन्दी की ध्वजा फहराने वाले ज्यादातर लोग मणिपुर के ही थे। इतना ही नहीं, आज भी यहीं के मूल निवासी हिन्दी के प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं। हम इन मणिपुरी हिन्दी-योद्धाओं के योगदान पर कृतज्ञता से सिर झुकाते हैं।

भूल-चूक

विश्वा के जनवरी 2025 के अंक में 'भारत के मूल हस्तलिखित संविधान का संरक्षण' में पृष्ठ 39 के चित्र में हीलियम की जगह नाइट्रोजन पढ़ा जाए। –सं.

काम, काम, कितना काम

डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

वरिष्ठ लेखक, विचारक dpagrawal24@gmail.com

मैं बहुत बरस पहले नौकरी से रिटायर हो चुका हूँ। नौकरी भी सरकारी थी, जिसके लिए यह बात बार-बार कही जाती है कि वहाँ काम का दबाव कम होता है। फिर मैंने तो पढ़ाने की नौकरी की जिसे और अधिक सुविधापूर्ण माना जाता है। जब मैंने नौकरी की, तब से अब तक आते-आते हालात बहुत बदल चुके हैं। अब सरकारी नौकरियां कम होती जा रही हैं और निजी क्षेत्र की तरफ खिसकती जा रही है। निजी क्षेत्र का सोच बहुत अलग होता है। वह अपने लाभ-हानि को सर्वोपरि समझता है। सरकार जैसी उदारता और जन कल्याण की भावना उसमें नहीं होती है। सरकार अगर किसी को नौकरी देती थी तो उसके पीछे काम करवाने के साथ-साथ आजीविका देने और एक सम्मानप्रद ज़िंदगी जीने के अवसर उपलब्ध कराने का भाव भी होता था। उसके लिए यह कमाई नहीं, कल्याण और जिम्मेदारी की बात होती है।

निजी क्षेत्र का सोच अलग होता है। बेशक निजी क्षेत्र बहुत बार सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र से बहुत ज़्यादा वेतन और अन्य सुविधाएँ देता है, लेकिन यह करते हुए वह इस बात पर भी नज़र रखता है कि आपको जितना दे रहा है, उतना या उससे अधिक आपसे ले ले। हाँ, अपनी कल्याणकारी छवि बनाए रखने के लिए वह छोटे-मोटे दान वगैरह भी करता और उनका भरपूर प्रचार करता रहता है। सीएसआर (कॉरपोरेट सोशल रेस्पॉन्सिबिलिटी) हमने बहुत बार सुना है। ऐसा नहीं है कि सारा का सारा निजी क्षेत्र ऐसा है, लेकिन अपवाद बहुत ही कम हैं।

हाल में एक बहुत बड़ी भारतीय बहुराष्ट्रीय कंपनी के चेयरमैन एवं मैनेजिंग डाइरेक्टर ने जब कर्मचारियों के सप्ताह में नब्बे घंटे काम करने की बात कही तो पूरे देश में इस पर चर्चाएँ हुईं। उन्होंने कहा, "चीनी लोग सप्ताह में 90 घंटे, जबकि अमरीकी लोग सप्ताह में केवल 50 घंटे काम करते हैं। अगर आपको दुनिया में सबसे ऊपर रहना है तो हफ्ते में 90 घंटे काम करना होगा।" वे इतना कहकर ही नहीं रुके। अपनी बात को और वज़नदार बनाते हुए उन्होंने कहा, "अगर मैं रविवार को भी काम करवा पाता तो मुझे ख़ुशी होगी, क्योंकि मैं ख़ुद रविवार को काम करता हूँ। लोगों को रविवार को ऑफिस जाना चाहिए। घर पर रहकर क्या करेंगे और कब तक बीबी को घूरेंगे?"

मैं अनुमान लगाता हूँ कि जब वे रविवार को भी काम करवाना चाहते हैं तो पाँच दिन वाले सप्ताह, जिसमें शनिवार की भी छुट्टी होती है, के बारे में तो सोचते ही नहीं होंगे। मैंने कैलकुलेटर लेकर गिनती की तो पाया कि अगर सप्ताह में पाँच दिन काम करते हैं तो सप्ताह के नब्बे घंटे पूरे करने के लिए हर दिन अठारह घंटे काम करना होगा। यह शायद संभव न हो, तो फिर सप्ताह में छह दिन के हिसाब से गणना की। पाया कि हर रोज़ पंद्रह घंटे काम करेंगे तो सप्ताह के नब्बे घंटे पूरे होंगे। और अगर सातों दिन काम करें तो लगभग तेरह घंटे (उससे थोड़ा ही कम) काम करने पर सप्ताह के नब्बे घंटे पूरे होंगे। अगर हम सातों दिन वाली बात (जो बहुत व्यावहारिक नहीं है) भी मान लें तो कर्मचारी सुबह नौ बजे ऑफिस पहुँचे और बिना खाये-पिए रात दस बजे तक काम करे, तब वह साहब की अपेक्षाओं पर खरा उतर सकेगा। अब यह तो संभव है नहीं कि हर कर्मचारी अपने ऑफिस के परिसर में ही रहता हो। उसे घर से ऑफिस आने जाने में भी कुछ समय लगेगा। अगर एक तरफ एक घंटा भी लगे तो वह सुबह आठ बजे घर से निकले और रात ग्यारह बजे तक घर पहुँचे। सप्ताह में एक दिन उसे छुट्टी का मिले, उस दिन वह अन्य ज़रूरी काम निपटाए। अगर पति पत्नी दोनों नौकरी करते हों, और उनके एक-दो बच्चे भी हों तो क्या स्थिति बनेगी? बच्चों को तो शायद अनाथालय में ही भेजना होगा।

मैं साहित्य का विद्यार्थी हूँ और कला-साहित्य-संगीत-फ़िल्म वगैरह में रुचि रखता हूँ। मुझे मिर्ज़ा ग़ालिब याद आए, और उनके साथ ही गुलज़ार भी याद आए। मिर्ज़ा ग़ालिब की एक बहुत लोकप्रिय ग़ज़ल 'मुद्दत हुई है यार को मेहमां किए हुए' के एक अत्यधिक लोकप्रिय शेर को आधार बनाकर गुलज़ार ने फ़िल्म 'मौसम' (1975) के लिए एक गाना लिखा था, जिसमें ग़ालिब के 'जी ढूँढता है' को बदल कर 'दिल ढूँढता है' कर दिया था। इसमें गुलज़ार ने लिखा था– "दिल ढूँढता है फिर वही फ़ुर्सत के रात दिन/ बैठे रहें तसव्वुर-ए-जाना किए हुए/ जाड़ों की नर्म धूप और आँगन में लेटकर/आँखों पर खींच कर तेरे आंचल के साये को/ औंधे पड़े रहें कभी करवट लिये हुए.."

मैं सोचने लगा हूँ, इन साहब के कर्मचारी के लिए तो ऐसा सोचना भी भयंकर वाला अपराध होगा। वे तो पत्नी (सॉरी, बीबी) को घूरने तक नहीं देना चाहते, आँगन में उसके आंचल के साये को आंखों पर डाल कर लेटने की क्या बात करें! इस गीत के बारे में सोचते-सोचते मुझे एक और गीत याद आया, जो मेरा बहुत पसंदीदा है। असल में लता मंगेशकर और हेमंत कुमार ने हिन्दी फ़िल्मों के लिए कुछ बेहद सुरीले युगल गीत गाए हैं। यह उनमें से एक है। 1954 में बनी फ़िल्म 'बादशाह' के लिए हसरत जयपुरी के लिखे एक गीत 'आ नीले गगन तले प्यार हम करें' में ये पंक्तियाँ आती हैं: "ये शाम की बेला ये मधुर मस्त नज़ारे/ बैठे रहें हम तुम यूँ ही बाँहों के सहारे/वो दिन ना आए इंतज़ार हम करें" और कम्बख़्त नायिका इतने भर से संतुष्ट नहीं होती है। गीत में आगे वह कहती है: "तू माँग का सिंदूर तू आँखों का है काजल/ ले बांध ले दामन के सलारों से ये आँचल/ सामने बैठे रहो श्रृंगार हम करें..."

अब सोचिये, सुबह आठ बजे घर से निकल कर पूरे दिन ऑफिस में खटकर रात ग्यारह बजे घर लौटने वाले किस कर्मचारी के लिए अपनी 'बीबी' को श्रृंगार करते देखना मुमकिन हो सकता है! यहीं यह भी याद कर लिया जाना उचित होगा कि इन साहब के इस वक्तव्य से पहले एक अन्य अति प्रतिष्ठित भारतीय कंपनी के को-फाउण्डर भी सप्ताह में सत्तर घंटे काम करने की सलाह दे चुके हैं। इन दोनों सलाहों को एक साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि निजी क्षेत्र की आकांक्षा एक ही है, कि अपने कर्मचारी का जितना दोहन करना संभव हो कर लिया जाए. इस दोहन का उसकी शारीरिक और मानसिक सेहत पर, उसके पारिवारिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस बारे में उनको कोई परवाह नहीं है।

यह बात हर कोई जानता है कि हर व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक अवस्था समान नहीं होती है। कोई कम काम कर सकता है, कोई ज़्यादा, लेकिन विशेषज्ञों का मानना है कि एक सप्ताह में औसतन पैंतीस से चालीस घंटे काम करवाया जाना आदर्श है। उनका कहना है कि अगर किसी व्यक्ति से सप्ताह में पचास या उससे अधिक घंटे काम लिया जाएगा तो यह बात उसके मानसिक तनाव, थकन और अनेक शारीरिक व्याधियों का कारण बन सकती है। इधर के अनेक अध्ययनों ने तो यह भी बताया है कि जो लोग सप्ताह में पच्चीस से चालीस घंटे काम करते हैं उनकी उत्पादकता और मानसिक स्वास्थ्य दोनों ही बेहतर होते हैं। शायद इसीलिए यह भी सलाह दी जाती है कि काम के बीच ब्रेक लिया जाना चाहिए और परिवार, दोस्तों और अपनी रुचियों के लिए भी नियमित रूप से समय निकालना चाहिए। लेकिन यह सब तो तभी संभव होगा जब काम के घंटे कम होंगे। सप्ताह में नब्बे घंटे काम करने की अनुशंसा करते हुए क्या इन बातों की तरफ ध्यान नहीं गया होगा? अगर न गया हो तो जाना चाहिए।

एक आदर्श स्थिति तो यह हो कि कर्मचारी से उसकी क्षमता के अनुसार काम लिया जाए, और उसे तदनुसार ही वेतन भी दिया जाए। यह बात तो न्याय संगत नहीं है कि किसी से काम तो दो व्यक्तियों का लिया जाए और वेतन उसे एक ही व्यक्ति का दिया जाए। ऐसे चेयरमैन महोदय जब ख़ुद के लिए यह कहते हैं कि वे रविवार को भी काम करते हैं, तब वे इस बात को क्यों नहीं बताते कि उनका वेतन कितना है। एक जानकारी के अनुसार वर्ष 2023-24 में उन्हें 51.05 करोड़ वार्षिक वेतन मिला था और यह उनकी कंपनी के कर्मचारियों के औसत वेतन का 534.57 गुना था। क्या वे अपने कर्मचारियों को भी वैसा ही वेतन देना चाहेंगे?

और बात केवल वेतन की नहीं है। अधिक वेतन का आकर्षण या उसे प्राप्त करने की विवशता किसी को मौत के मुँह में ले जाए तो क्या ले जाने दिया जाना चाहिए? यह याद किया जा सकता है कि पूरी दुनिया में छुट्टियों का प्रावधान क्यों किया जाता है। अपने कर्मचारियों से प्रति सप्ताह नब्बे घंटे काम लेने की आकांक्षा रखने वालों के सोच को मानवीय तो कतई नहीं कहा जा सकता।

डॉ. रामदरश मिश्र की प्रसिद्ध ग़ज़ल

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे,
खुले मेरे ख़्वाबों के पर धीरे-धीरे।

किसी को गिराया न ख़ुद को उछाला,
कटा ज़िंदगी का सफ़र धीरे-धीरे।

जहाँ आप पहुँचे छलाँगे लगाकर,
वहाँ मैं भी आया मगर धीरे-धीरे।

पहाड़ों की कोई चुनौती नहीं थी,
उठाता गया यूँ ही सर धीरे-धीरे।

न हँस कर न रोकर किसी में उड़ेला,
पिया खुद ही अपना ज़हर धीरे-धीरे।

गिरा मैं कहीं तो अकेले में रोया,
गया दर्द से घाव भर धीरे-धीरे।

ज़मीं खेत की साथ लेकर चला था,
उगा उसमें कोई शहर धीरे-धीरे।

मिला क्या न मुझको ए दुनिया तुम्हारी,
मोहब्बत मिली है मगर धीरे-धीरे।

रोचक

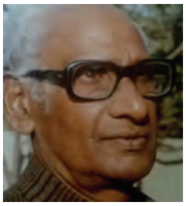

शब्द चलते हैं

डॉ. भोलानाथ तिवारी

मनुष्य चलता है तो शब्द भी चलते हैं, किन्तु शब्दों के चलने के दो अर्थ होते हैं। एक तो चलने का अर्थ है 'प्रचलित होना'। कहा जाता है—अमुक शब्द अब नहीं चलता। दूसरा अर्थ होता है 'आदमी के चलने' की तरह एक स्थान या देश से दूसरे स्थान पर जाना या यात्रा करना। यहाँ 'शब्द चलते हैं' का दूसरा अर्थ ही लिया जा रहा है। शब्दों की यात्रा या उनका चलना मनुष्यों के चलने या उनकी यात्रा से भिन्न होता है। मनुष्य यदि एक स्थान से चलकर दूसरे स्थान पर जाता है, तो पहले स्थान पर उसे हम नहीं देख सकते, किन्तु शब्द एक स्थान से दूसरे, दूसरे से तीसरे और इसी प्रकार और भी कई स्थानों पर जा सकते हैं, और वे हर स्थान पर देखे जा सकते हैं। अंग्रेज़ी के बहुत से शब्द भारत की भाषाओं में भी प्रचलित हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि यदि वे वहाँ से चलकर आए और यहाँ उपनिवेश बनाकर बस गए तो इंग्लैंड से उनका अस्तित्व ही मिट गया। इस दृष्टि से ब्रह्म की बराबरी करते हुए शब्द सर्वव्यापक हो सकते हैं।

कुछ शब्दों की यात्राएँ यहाँ देखी जा सकती हैं :

अफ़ीम– मूलतः यह शब्द यूनानी है जहाँ इसका रूप है 'ओपियन'। इसका मूल अर्थ है 'पोस्ते का रस'। अफ़ीम सबसे पहले कदाचित् यूनान में ही बनी। यूनानी भाषा से यह शब्द लैटिन में पहुँचा और वहाँ इसका रूप हो गया 'ओपिअम'। वहाँ से फ़्रांसीसी, अंग्रेज़ी, जर्मन आदि सभी यूरोपीय भाषाओं में यह इसी या कुछ भिन्न रूप में प्रविष्ट हो गया। यूनान से इसने अरब की यात्रा की और वहाँ यह 'अफ़्यून' बन गया। वहाँ से ईरान होते यह भारत पहुँचा तो भारतीय पंडितों ने 'अहिफेन' (सर्प का फेन) तथा 'अफेन' रूप में इसे संस्कृत पोशाक पहना दी। यही शब्द हिन्दी में 'अफ़ीम', गुजराती में 'अफीण', मराठी में 'अफ़ीम', 'अफीण', 'अफू' तथा नेपाली में 'अफिम' आदि रूपों में मिलता है। चीनी लोग अफ़ीम के बड़े शौकीन रहे हैं, अतः यह शब्द भला वहाँ क्यों न पहुँचता? चीनी में यह 'अ-फु-यंग' रूप में मिलता है।

शक्कर– 'शक्कर' का आदिस्थान भारत है और इसके लिए अपना पुराना संस्कृत शब्द है 'शर्करा'। प्राकृतों में आकर 'शर्करा' का 'सक्कर' बना, किन्तु यही 'शर्करा' फ़ारसी में जाकर 'शकर' तथा अरबी में 'सुक्कर' बन गई। अरबी से इस शब्द ने पूरे यूरोप की यात्रा की जहाँ विभिन्न भाषाओं में, विभिन्न रूपों में यह मिलता है। उदाहरणार्थ लैटिन Zuccarum, इटैलियन Zucchero, फ़्रांसीसी Sucre, Cucre, अंग्रेज़ी Secreen, Sugar, jaggary, रूसी 'साखर' आदि। इस शब्द ने पूरे भारत की भी यात्रा की है : कश्मीरी 'शेकर', गुजराती 'साकर', मराठी 'साखर', सिन्धी 'हकुरु' आदि।

खाँड़– यह भी मूलत: भारतीय शब्द है। संस्कृत 'खंड' इसका मूल है। इसने भी पूरे भारत की यात्रा की है : पालि 'खंडो', प्राकृत 'खंडा', बंगला 'खाँड', ओडिया 'खडा', हिन्दी 'खाँड़', सिन्धी 'खंडु', गुजराती-मराठी 'खाँड' आदि। यह शब्द भारत के बाहर भी गया : सिंहली 'कड', अरबी-फ़ारसी 'क़न्द' (भारतीय मिठाई कलाकन्द में कन्द यही शब्द है), अंग्रेज़ी candy आदि।

हिन्द– मूलतः यह शब्द संस्कृत का सिन्धु है और इसका मूल अर्थ बड़ी नदी या समुद्र है। सिन्धु नदी बड़ी थी, अत: उसे सिन्ध नाम दिया गया। उसी आधार पर आसपास का क्षेत्र भी सिन्ध या सिन्धु कहलाया। यह शब्द ईरान पहुँचा तो स के ह में परिवर्तन से यह 'हिन्दु' या हिन्द हो गया। यह 'हिन्द' धीरे-धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया। हिन्द' में फ़ारसी के ईक प्रत्यय के लगने से 'हिन्दीक' बना। यही हिन्दीक यूनान पहुँचा तो ह ध्वनि के लोप से इन्दिका शब्द बना जिसका अर्थ हिन्द या भारत है। यही लैटिन में इन्दिया तथा आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में इंडिया और इन्दिया आदि रूपों में मिलता है। चीनी साहित्य में प्रयुक्त इन्तुको इन्तु तथा शिन्तु भी यही है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ईरानी शब्द हिन्द और हिन्दु (स्तान) वहाँ से लौटकर फिर भारत में भी आए और यहाँ के विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं में कई रूपों में विद्यमान हैं।

गंगा– आज का प्रसिद्ध गंगा (गंगा नदी का नाम) शब्द हिन्दी में संस्कृत से आया माना जाता है। पाणिनी के सूत्रों के आधार पर साधकर इसे शुद्ध संस्कृत शब्द कहा भी जा सकता है। पर यथार्थतः यह शब्द चीनी-परिवार का है और इसका अर्थ पानी है। उधर की यांगट्सीक्यांग, मीक्यांग तथा सीक्यांग आदि नदियों के नामों में क्यांग शब्द यही 'गांग' या 'गंगा' है। भारत में भी यह गंगा पहले पानी का ही वाचक था। मराठी में तो अब भी गंगा का अर्थ पानी होता है। यहाँ गंगा के अतिरिक्त राम गंगा पाताल गंगा आदि नाम भी उस पुरानी बात की पुष्टि करते हैं। भारत में प्राचीनतम जाति चीन से होकर ही आई थी, अतः यह शब्द उनके साथ यहाँ चला आया था।

खाट– आज का हिन्दी का विद्यार्थी जब अंग्रेज़ी पढ़ना आरम्भ करता है तो उसे रटाया जाता है सी-ओ-टी 'कॉट' (cot)-कॉट माने 'चारपाई'। उसे शायद नहीं पता कि उसकी हिन्दी का ही अत्यन्त प्रचलित शब्द 'खाट' यात्रा करता-करता इंग्लैंड पहुँचा और वहाँ घिस-घिसाकर 'कॉट' बनकर अंग्रेज़ी भाषा में घर कर गया और इस प्रकार आज वह अपने ही 'खाट' शब्द को कॉट बनाकर रट रहा है। यह कुछ वैसी ही बात है जैसे कस्तूरी मृग उस कस्तूरी की सुगन्धि के लिए, जो उसकी अपनी है (उसी के शरीर में है), इधर-उधर दौड़ता-फिरता है।

शब्दों का यह चलना या उनकी यात्रा भाषाओं को बहुत प्रभावित करती है। हिन्दी में लगभग 2500 अरबी शब्द, लगभग 3500 फ़ारसी शब्द, लगभग 3000 अंग्रेज़ी शब्द, लगभग 100 पुर्तगाली शब्द, 100 से ऊपर पश्तो शब्द तथा लगभग 125 तुर्की शब्द इसी प्रकार चलकर आए हैं, जिनका इस समय हिन्दी में धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है। इन्होंने हिन्दी अभिव्यक्ति को काफ़ी प्रभावित किया है। अंग्रेज़ी तथा जर्मन में विदेशी शब्दों की संख्या लगभग 15-15 हज़ार है।

शब्दों की इस प्रकार की यात्राएँ राजनीतिक, व्यापारिक या सांस्कृतिक आदान-प्रदान में होती हैं, और इस प्रकार ये चलते-फिरते शब्द विश्व को एक सूत्र में बाँधने की दिशा में अनादिकाल से प्रयत्नशील हैं—और शायद सदा रहेंगे।

पद्मश्री शतायु सहज सर्जक डॉ. रामदरश मिश्र

वैद्यनाथ झा

हिन्दी साहित्यकारों के जीवन-इतिहास में यह एक विरल घटना है कि एक साहित्यकार अपने जीवन के सौ वसंत देखने के बाद 101 वें वसंत के दर्शन-पथ पर अग्रसर हो। हम चर्चा कर रहे हैं हिन्दी के शीर्ष साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र की। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के डुमरी गाँव में 15 अगस्त 1924 को हुआ। तदनुसार उन्होंने 15 अगस्त 2024 को अपने जीवन के सौ वर्ष पूरे कर 101वें वर्ष में प्रवेश किया। यद्यपि उन्होंने 14-15 वर्ष की अवस्था से ही लिखना प्रारम्भ कर दिया था पर उनकी पहली रचना "पथ के गीत" (काव्य संग्रह) सन् 1951 में प्रकाशित हुआ था। तब से अब तक उनकी प्रकाशित कृतियों की संख्या सौ से अधिक है जिनमें 30 कविता-संग्रह, 26 कहानी-संग्रह (कुल 186 कहानियाँ), 15 उपन्यास, 11 आलोचना, 4 डायरी, 2 यात्रा-संस्मरण, 4 संचयन, 5 संस्मरण हैं। इनकी समस्त रचनाओं पर 14 खंडों में रचनावली प्रकाशित हुई जिसकी संपादक उनकी सुपुत्री डॉ. स्मिता मिश्र हैं जो दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। डॉ. साहब को साहित्य अकादमी, व्यास, सरस्वती सम्मान, दयावती मोदी पुरस्कार, भारत-भारती आदि 14 पुरस्कार मिल चुके हैं।

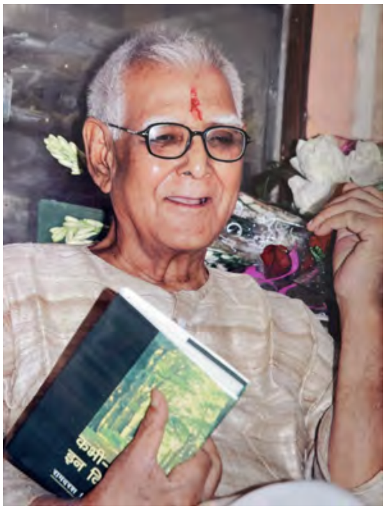

रामदरश मिश्र
(15 अगस्त 1924)

साहित्य की लगभग सभी विधाओं में (नाटक छोड़कर) इतना समृद्ध रचना-भंडार देने वाले इस साहित्य-महर्षि के व्यक्तित्व और मानसिक-संरचना को समझना आवश्यक एवं प्रासंगिक है।

डॉ. रामदरश जी सीधे, सरल, सहज, शांत, स्वाभिमानी, संतुलित व स्थिर व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उनके शांत व्यक्तित्व में कोई शीघ्रता या किसी लाभ के लिए किसी दांव-पेंच या उखाड़-पछाड़ की प्रवृत्ति नहीं है। वे अजातशत्रु हैं।

इस आलेख में मैंने विभिन्न अवसरों पर लोगों द्वारा लिए गये उनके साक्षात्कारों के आधार पर उनके सर्जक-व्यक्तित्व को समझने का प्रयास किया गया है।

डॉ. साहब ग्रामीण पृष्ठभूमि के साहित्यकार हैं। उनका गाँव डुमरी जहाँ उन्होंने अपने जन्म से लेकर 22-23 वर्ष गुजारे हैं। यह गाँव ताप्ती नदी के कछार क्षेत्र में है। उन 22 वर्षों ने उनके स्वभाव, सोच एवं प्रकृति में संवेदना, करुणा और सहजता भरी, उनके रचनाकार को गढ़ा। वे साक्षात्कारों में ही नहीं, विभिन्न मंचों में भी कहते हैं कि मैं इतने लम्बे समय तक नगरों, महानगरों में रहने के बावजूद गाँव को नहीं छोड़ पाया। जहाँ-जहाँ गया, गाँव मेरे साथ गया।

रजनी श्रीवास्तव को दिए गए एक साक्षात्कार में, उनके यह पूछने पर कि "दिल्ली महानगर में रहते हुए भी आप ग्रामीण संवेदना से जुड़े रहे, इन दोनों को लेकर कोई द्वन्द्व आपके मन में चलता है?" डॉ. साहब ने उत्तर दिया–

"ऐसा है कि गाँव जो है, वह एक भूगोल भी है, एक परिदृश्य भी है, एक दृष्टिकोण भी है। पंत ने कहा है, "देख रहा है आज विश्व को, मैं ग्रामीण नयन से" तो ग्रामीण नयन भी होता है, एक दृष्टि भी होती है। मैंने गाँव से अद्‌भुत अनुभव-संपदा एकत्र की थी। गाँवों को मैंने जीया है। जो लोग गाँव को जीते हैं, आर-पार जीते हैं, बड़ी गहराई से जीते हैं और बड़े अकुंठ भाव से तमाम पात्रों की पहचान करते हैं। अपने आस-पास के दुःख-दर्द की पहचान करते हैं। कौन सा चूल्हा जला है, कौन सा नहीं जला, कौन सी आँख रोई, कौन सी हँसी है, की पहचान होती है।" स्पष्ट है कि वे परिवेश (ग्रामीण) से गहरे जुड़े रहे हैं। परिवेश का-गाँव का सौन्दर्य या कुरूपता उनका अपना है, नितांत निजी। परिवेश की कुरूपता ही उनके सरोकारों के केन्द्र में रही।

"ये हाँफते हुए गड्डे/ये काइयाँ भरे ताल/ये टूटे हुए कुएँ/ये ही सब मेरे हैं/लेकिन दूर के सागर पर मैं कब तक भटकता रहता/अपनी कटी-फटी धरती छोड़कर/कब तक पराए आकाश में टंगा रहता/ये खेत/ये कच्चे रास्ते/ये मिट्टी के मकान/मुझसे लिपट कर मुझे गंदा कर देते हैं।" आलोचकों ने भी कहा कि डॉ. रामदरश मिश्र की कविताओं में गाँव के बिम्बों का प्रतीक अधिक हुआ है।

डॉ. मिश्र ने लगभग सभी विधाओं में रचना की है, पर वे स्वयं को प्रथमतः और अंततः कवि मानते हैं। ए.आर. आजाद को दिए एक साक्षात्कार में पूछे गए एक प्रश्न कि आपने साहित्य में सबसे ज्यादा किस विधाओं में लिखा है, वे बताते हैं कि "देखिए, मैंने गणना तो नहीं की है लेकिन मूलतः तीन विधाओं यानी कविता, कहानी और उपन्यास में से सबसे ज्यादा कविता के साथ रहा है और आज जब कि मैं कहानी-उपन्यास के साथ नहीं हूँ, तब भी कविता के साथ चल रहा हूँ।"

ए.आर. आजाद ने एक प्रश्न किया–'आपने कब लिखना शुरू किया और लेखन में कब आए?' तो डॉ. मिश्र जी ने उत्तर में कहा– "जब मैं दर्जा छह में था तब मैंने टूटी-फूटी कविताएँ लिखनी शुरू कर

दी थी। उस समय नहीं पता होता था कि कविता क्या होती है? लेकिन जब मन में कुछ छंद कहने की अकुलाहट होती थी तब उसे कागज पर लिख लिया करता था। बनारस आने पर छायावादी संस्कार पड़ रहा था। वहाँ मेरे स्कूल के निकट जयशंकर प्रसाद जी के पड़ोसी होमियोपैथी के डाक्टर राजेन्द्र नारायण शर्मा मिले छायावादी रंग में रंगे डॉ. शर्मा, फिर आगे बी.एच.यू. में त्रिलोचन और ठाकुर प्रसाद सिंह के सम्पर्क में आया। धीरे-धीरे मुझे लगने लगा कि मेरी भाषा (छायावादी) प्रभाव से मुक्त होती गई और मैं अपने कथ्य और शिल्प में सुधार करता गया। 1952 आते-आते मेरी कविता नई कविता की धारा में शामिल होती गई।

आजाद जी ने एक प्रश्न किया– "आप अपनी रचना में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कितना प्रभाव मानते हैं। उनके आपकी पहली मुलाकात कब हुई?"

डॉ. मिश्र ने उत्तर दिया– "1951 में मुझे हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का शिष्य होने का गौरव प्राप्त हुआ और तब से मेरी सोच और समझ में न जाने उनके कितने प्रभाव अंकित होते चले गए।"

उनका मानना है कि अनुभव की सघन उपस्थिति कविता को विशिष्ट बनाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि कविता सृजन में विचार, कल्पना, मूल्यबोध या अन्य तत्वों के कोई मायने नहीं हैं।

राधेश्याम तिवारी जी के इस प्रश्न के उत्तर में कि आरम्भ में आपने गीत खूब लिखे परन्तु बाद में आप गीत की अपेक्षा अन्य विधाओं में लिखने लगे। "ऐसा क्यों" के उत्तर में डॉ. साहब ने कहा–मेरा ख्याल है कि छंद में लिखने वाले प्रायः सभी कवियों ने अपनी काव्य-यात्रा गीत से ही शुरू की है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि कविता के प्रारम्भिक दौर में गीत ही कविता की केन्द्रीय धारा रहा है। मानवीय व प्राकृतिक सुन्दरता, उसके प्रति प्रेम तथा तज्जन्य अनेक मानवीय सुखात्मक-दुखात्मक अनुभूतियाँ उसका कथ्य रही है।

शुरू में मैंने गीत खूब लिखे और बाद के भी मेरे कई संग्रहों में गीतों की संख्या काफी रही किन्तु मेरे आरम्भिक काव्य संग्रह 'पथ के गीत' में कई कविताएँ ऐसी है जो मुक्त छंद की हैं, लंबी हैं। इन कविताओं में गीतेतर संवेदना की अभिव्यक्ति की गई है।'

डॉ. साहब की सभी विधाओं की रचनाओं में प्रकृति की व्यापक उपस्थिति होती है। यह भी उनके गाँव की देन है। उन्होंने प्रकृति को अपनी कविताओं में उतारा नहीं है। सत्यप्रिय पाण्डेय और अमरेन्द्र पाण्डेय ने उनसे पूछा, "क्या गाँव की तरह प्रकृति भी आपकी कविता की केन्द्रीय वस्तु रही है?" डॉ. मिश्र ने कहा कि "प्रकृति मेरी कविता की केन्द्रीय वस्तु है, पर इस तरह नहीं कि अलग से लाई गई है, बल्कि वह उसके साथ ही है। शहर में आषाढ़ बरसेगा तो यहाँ के लोगों को बाढ़ से मुक्ति मिलेगी जबकि गाँव में उसका उल्लास, उन्माद अलग तरीके का होगा। वह गाँव के लोगों को विभोर कर देगा। वसंत में आम के बौर आने से गाँव में उल्लास का वातावरण बनेगा। दरअसल प्रकृति हमारे लेखन का आधार है।

मुझे (वैद्यनाथ झा) दिए एक साक्षात्कार में डॉ. रामदरश मिश्र ने अपनी कविताओं में प्रकृति का प्रसंग आने पर अपने एक गीत की एक पंक्ति सुनाई–

खेत में बदमाश बदरा लेत होइहैं घेरि प्यारी ओ
देह पर लुग्गा सूखत होई तोरे अधफेरि प्यारी ओ

मैंने उनसे यह प्रश्न किया कि "आपकी एक कविता– 'चिड़िया उड़ती हुई थक कर एक जलती हुई डाल पर बैठी.... सोचने लगी, जंगल में कोई आदमी आया था क्या?' क्या मानव पर विश्वास के संकट को प्रतिबिम्बित नहीं करता?"

उन्होंने उत्तर में कहा–"यकीनन। यह सच है कि मनुष्य ने अपनी विकास-यात्रा में सिर्फ अपने बारे में सोचा। अपने परिवेश, परिस्थितिकी, पर्यावरण के बारे में कुछ नहीं सोचा। नतीजा–

"अब हमारे साथ/न धरती है, न आकाश है/न हवा है, न आग है, न पानी है/फिर भी हम जिंदा हैं/ न जाने किसकी मेहरबारी है।"

मैंने इसी साक्षात्कार में उनसे पूछा था–"लगभग पचास वर्षों से आप दिल्ली में हैं, फिर भी आपका दिल्लीकरण नहीं हुआ। कारण?"

उन्होंने उत्तर दिया था–"दिल्ली विविध क्षेत्री कर्मभूमि है। दिल्ली के अंदर कई दिल्ली हैं–साहित्य, व्यापार, राजनीति, योग, दर्शन, प्रौद्योगिकी, शिक्षा की दिल्ली। जरूरत है कि आप अपनी रुचि के अनुरूप दिल्ली ढूँढ लें और उस दिल्ली में पूरी तरह रम जायँ। तभी दिल्ली फलवती होगी।" मेरे एक अन्य प्रश्न– "आपके साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में बनारस का काफी योगदान है। आपको एक से बढ़कर एक साहित्यिक विभूतियों का सान्निध्य मिला। कुछ उदाहरण? कोई ऐसा स्मरणीय पल जो आपके इतने वर्षों बाद भी याद हो?"

इस प्रश्न के उत्तर में डॉ. मिश्र ने कहा–"बनारस तो भाई झा जी, बनारस ही है। निराला, बच्चन, आचार्य केशव प्रसाद मिश्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पद्म नारायण आचार्य जैसी विभूतियों का सान्निध्य मिला।" वे आगे कहते हैं–

मुझे वह घटना भूले नहीं भूलती। वर्षों पहले एक काव्यपाठ के अवसर पर मैं अपना वह गीत– "उमड़ रही पुरवइया कुंतल जाल सी...." मंच से पढ़ रहा था। मंच पर बैठै आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मेरे पाठ पर झूमते रहे। पाठ के अंत में पूछा– "क्या करते हो?" समझें कि उनका यह प्रश्न मेरे लिए एक रिमार्क सा लगा। मुझे लगा कि इस रिमार्क और झूमने के आगे नोबल पुरस्कार फेल है। ...

मेरा अगला प्रश्न था–"आपकी रचनाओं का फलक काफी व्यापक रहा, फिर भी आलोचकों ने आप पर उतना ध्यान नहीं दिया जितना आप 'डिजर्व' करते थे।"

डॉ. मिश्र ने उत्तर दिया–

मैंने पहले ही कहा मेरी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। जो बना, लिखता रहा–

"किसी को गिराया न खुद को उछाला/कटा जिंदगी का सफर धीरे-धीरे।

जहाँ आप पहुँचे छलांगे लगाकर, वहाँ मैं भी पहुँचा, मगर धीरे-धीरे।"

लेखिका इंदु जोशी ने डॉ. रामदरश मिश्र जी की रचना-प्रक्रिया पर उनसे कई प्रश्न पूछे। उन्होंने एक प्रश्न पूछा– "डॉ. साहब, ऐसे अनेक रचनाकार हैं, जो लिखने से पहले काफी सोचते-विचारते हैं

यानी जो भीतर उठ-उभर रहा है, उसे पकने देते हैं, फिर कागज पर उतारते हैं। आप क्या करते हैं?

कुछ रचनाकार ऐसे भी होते हैं जिनके लिए किसी क्षण विशेष में कुछ कौंधता है और वे रचनारत हो जाते हैं। यह आकस्मिकता ही उनकी प्रेरक शक्ति होती है। आपका क्या अनुभव है?"

डॉ. मिश्र का उत्तर था–"देखा, सुना, अनुभव किया हुआ यथार्थ एकाएक रचना में नहीं उतरता। कई बार मेरे भीतर कोई वस्तु कौंधती है तो एहसास हो जाता है कि वह रचना की मांग कर रही है और मैं उसे छोड़ देता हूँ। वह धीरे-धीरे अनजाने ही मेरे भीतर पकती रहती है। काफी दिनों बाद भी जब लगता है कि वह कौंध बुझी नहीं है, तब उसे रचना में उतारने के लिए अपने को तैयार कर लेता हूँ। अनुभव और रचना में समय की एक दूरी आवश्यक होती है। यह दूरी अनुभव के फालतू अंशों को काट-छाँट देती है और उतना ही ग्रहण करती है जितना सारवान होता है। लम्बी रचनाओं, प्रबंध-काव्यों, उपन्यासों, नाटकों में तो एक बड़ी और संष्लिष्ट दुनिया उतरती है। उसे उतारने के लिए अनुभवों और विचारों की बड़ी तैयारी करनी पड़ती है। पग-पग पर सोचने-विचारने, ठहरने, काटने-पीटने की आवश्यकता होती है। यहाँ आकस्मिकता या तात्कालिक जैसी कोई चीज नहीं होती है।"

सुश्री इन्दु जोशी ने रचना-प्रक्रिया से जुड़ा एक और प्रश्न किया। उन्होंने पूछा– "कुछ विचारकों का मत है कि अवचेतन रचना-कर्म को बहुत प्रभावित करता है। आपका क्या मन्तव्य है।

अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में अनेक लोगों ने लिखा-क्या है। कुछ का कहना है कि यह जटिल प्रक्रिया है जो अनुमानपरक है। कुछ का मानना है कि यह जल की भाँति संश्लिष्ट क्रिया है, जिसे वैज्ञानिक ढंग से बताया जा सकता है यानी यह गूंगे का गुड़ नहीं है वरन पारदर्शी तरलता है जल की, हाइड्रोजन और आक्सीजनन से बनने वाले जल की। कुछ का मानना है रचना-प्रक्रिया निर्वाक स्थिति है। आप क्या अनुभव करते हैं? कृपया अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में बताएँ।

डॉ. साहब का उत्तर था–रचना सचमुच एक जटिल प्रक्रिया है। ऊपरी तौर पर दिखाई पड़ने वाली रचना-प्रक्रिया को आसानी से बताया जा सकता है किन्तु भीतरी स्तर पर चलने वाली रचना-प्रक्रिया इतनी जटिल होती है कि उसे ठीक-ठीक समझाया नहीं जा सकता है। ...., जो चीजें जितनी सहज और संश्लिष्ट होती है, उसकी व्याख्या उतनी ही कठिन होती है। मैं अपनी बात कहूँ–मैं न जाने किन-किन प्रेरणाओं से लिखता हूँ। कौन-कौन से अनुभव, कौन-कौन से पात्र, कौन-कौन सी घटनाएँ, कौन-कौन से प्रसंग कब मेरे भीतर आ जाते हैं और एक दूसरे से घुलते मिलते हुए रचना में उतरते रहते हैं मुझे पता नहीं चलता। यदि इन्हें अलग-अलग करके देखने का प्रयत्न करूँगा तो बिखर जायेंगे। हाँ, रचना-प्रक्रिया के बाहरी स्वरूप पर बात करना आसान है। मैं सर्जनात्मक लेखन सुबह यानी नाश्ते के बाद करता हूँ। मैं.... रुक-रुक कर थोड़ा-थोड़ा लिखता हूँ।"

यकीनन यहाँ प्रस्तुत किए गए साक्षात्कारों के अंश आज के दौर के शीर्ष रचनाकार डॉ. रामदरश मिश्र जी के जीवन और सर्जक के विभिन्न पक्षों को साहित्य-समाज के सम्मुख रखते हैं। वे शरीर से थके हैं, वार्द्धक्य लेखन क्षमता को भी प्रभावित करता है पर उनका मन अभी भी बच्चा है, ऊर्जायित है और कुछ न कुछ सिरजता रहता है। वे कहते हैं कि 'अभी भी सौन्दर्य और असौन्दर्य से रात-बेरात गहरी अनुभूति होती है। आप चाहें तो मेरी इस कविता से आज के मेरे मन को देख सकते हैं–

अभी भी आँखों को सीचते हैं/फूल, पत्ते, मौसम, ऋतुएँ/और मैं संवाद करता करता/महकने लगता हूँ/अभी प्राणों में उतर आती है/खिली हुई मानव छवियाँ/ और मैं एक गुनगुनाती झील में नहाने लगता हूँ/अभी भी आते हैं बचपन के सपने/ और मैं गल-गलाकर/ नदी सा बहने लगता है।

ईश्वर से प्रार्थना है कि हमें उनका दुर्लभ सान्निध्य मिलता रहे।

प्रेरक

दया धर्म का मूल है

डोनाल्ड ट्रम्प राष्ट्रपति के रूप में अपना कार्यकाल के शुरू होने पर प्रार्थना सेवा के लिए वाशिंगटन नेशनल कैथेड्रल पहुँचे। प्रार्थना सेवा के दौरान बिशप मैरिएन एडगर बुडे ने अप्रवासियों के पक्ष में तर्क देते हुए कहा,

जो लोग हमारी फ़सलें काटते हैं और हमारे कार्यालय भवनों की सफाई करते हैं, जो पोल्ट्री फार्मों और मांस-पैकिंग कारखानों में काम करते हैं, जो रेस्तरां में हमारे खाने के बाद बर्तन धोते हैं और अस्पतालों में रात की पाली में काम करते हैं, वे ... नागरिक नहीं हो सकते हैं या उनके पास सही दस्तावेज नहीं हो सकते हैं, लेकिन अधिकांश अप्रवासी अपराधी नहीं हैं।

बुडे ने बिना दस्तावेज वाले अप्रवासियों को करदाता और अच्छे पड़ोसी बताया।

उन्होंने आगे कहा, 'मैं आपसे दया करने के लिए कहती हूँ। मिस्टर प्रेसिडेंट, हमारे समुदायों में उन लोगों की जिनके बच्चों को डर है कि उनके माता-पिता को उनसे दूर कर दिया जाएगा। आप उन लोगों की मदद करें जो अपने ही देश में युद्ध क्षेत्रों और उत्पीड़न से भाग रहे हैं ताकि वे यहाँ सहानुभूति और खुशी पा सकें। हमारा ईश्वर हमें सिखाता है कि हमें अजनबी के प्रति दयालु होना चाहिए।'

बधाई

मनु भाकर को बीबीसी स्पोर्ट्स वूमन ऑफ द ईयर का सम्मान मिला।

विदेश में देसी (10)

विश्व में लोकतंत्र–परंपरा और चुनौतियाँ

धर्मपाल महेंद्र जैन

dharmtoronto@gmail.com

विश्व के 206 सम्प्रभु देशों में से 159 देश (वर्ष 2017 तक की स्थिति) अपने आधिकारिक नाम में गणराज्य याकि 'रिपब्लिक' शब्द का उपयोग करते हैं। गणराज्य जनता का देश होता है, यह शासकों की निजी सम्पत्ति नहीं होता। इसमें सत्ता के प्रमुख और महत्त्वपूर्ण पद खानदान से या विरासत में नहीं मिलते। बस, गणतंत्र से एक कदम आगे है लोकतंत्र। गणतंत्र में जनता का प्रतिनिधित्व कुछ चुने हुए लोग करते हैं जबकि प्रजातंत्र में ये प्रतिनिधि भी आम जनता द्वारा ही चुने जाते हैं। ये प्रतिनिधि किसी विधान या संविधान के अनुसार अपनी शक्तियों का उपयोग करते हैं। गणराज्य में शासन के सर्वोच्च पद पर जनता में से कोई भी व्यक्ति पदासीन हो सकता है जबकि लोकतंत्र या "प्रजातंत्र" में आम जनता या उसके द्वारा बहुमत से चुने गए प्रतिनिधियों के विवेक से शासन चलता है। आज विश्व के अधिकांश देश गणराज्य हैं और लोकतंत्र भी। भारत भी एक लोकतान्त्रिक गणराज्य है।

गणराज्य जो लोकतन्त्र नहीं हैं

हर गणराज्य लोकतान्त्रिक हो, यह आवश्यक नहीं है। चीन, उत्तरी कोरिया, वियतनाम, क्यूबा, सीरिया, ईरान इत्यादि गणतन्त्र हैं क्योंकि उनका राष्ट्र प्रमुख सामान्य व्यक्ति था या रहा है। किन्तु इन देशों में लोकतान्त्रिक ढंग से चुनाव नहीं होते। पाकिस्तान, चीन, ईरान, म्यांमार, सोवियत संघ एवं दक्षिणी अमेरिकी महाद्वीप के कई देश ऐसे हैं जहाँ जनता और विपक्ष को दबाया जाता है और जनता की इच्छा से शासन नहीं चलता।

लोकतन्त्र जो गणराज्य नहीं हैं

कोई लोकतन्त्र गणराज्य हो, यह भी जरूरी नहीं है। कई लोकतंत्रों के राष्ट्राध्यक्ष वंशानुगत राजा होते हैं, जबकि वहाँ की सरकार जनता द्वारा निर्वाचित संसद के द्वारा बनती है और चलती है। ऐसे देशों के कुछ उदाहरण हैं– ब्रिटेन (यू.के.) और उससे संबद्ध देश जिनमें कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, जापान, स्वीडन, डेनमार्क, बेल्जियम, नीदरलैंड्स, नॉर्वे आदि शामिल हैं।

भारत-लोकतांत्रिक संघीय गणराज्य

आधुनिक भारत गणराज्य है और लोकतंत्र भी। भारत में गणराज्य की परंपरा वैदिक काल से मानी जाती है। महावीर और बुद्ध के समय की समृद्ध गणपरंपराओं का वर्णन जैन एवं बौद्ध धर्मग्रंथों में विशिष्ट रूप से आता है। उस काल में किसी गणराज्य की गणसभा में प्रत्येक परिवार (कुल) का एक व्यक्ति गणसभा का सदस्य होता था। प्राय: ये व्यक्ति क्षत्रिय कुलों के ही होते थे। ऐसे कुलों की संख्या प्रत्येक गण में परंपरा से निश्चित होती थी। गणसभा में गण सदस्यों की संख्या हजारों में होती थी और उनके प्रतिनिधि गणसभा में प्रतिनिधित्व करते थे। प्रशासन के लिये अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। महावीर और बुद्ध के समय में उत्तर पूर्वी भारत गणराज्यों का प्रधान क्षेत्र था और लिच्छवि, विदेह, शाक्य, मल्ल आदि मुख्य गण थे। लिच्छवि, मल्ल तथा अन्य गणों ने अपनी रक्षा के लिए संघ बनाये। इसी तरह बज्जिसंघ (वज्जिसंघ) का निर्माण हुआ। कालांतर में ये संघ आपस में ही लड़ने लगे और लिच्छविगण के समुद्रगुप्त ने इन संघों को जीत कर राजतंत्र बनाया। भारत की भाँति ही ग्रीस की गण परंपरा भी प्राचीन मानी जाती है। वहाँ सिकंदर के पिता फिलिप ने ग्रीक गणराज्यों को समाप्त कर राजतंत्र बनाया। लंबा इतिहास रहा, विश्व में राजतंत्रों का। अब हमारा युग है, कृत्रिम मेधा और कंप्युटर संचालित दुनिया का। अब राजतंत्र गणतंत्र में बदल चुके हैं, और अधिकांश देश लोकतंत्रीय संवैधानिक पद्धति से संचालित हो रहे हैं। प्राचीन ग्रीस का दासवाद, प्राचीन भारत और यूरोप के गणराज्यों में सीमित जनप्रतिनिधित्व जैसी असमानता-प्रधान शासन प्रणाली अब समाप्त हो चुकी है। आमतौर पर विश्व में अब 'आम जनता' उसके भाग्य की विधाता है। बचे-खुचे सैन्य अधिनायकवाद या एक पार्टी के शासन को समाप्त करने के लिए उन देशों की जनता जागरुक है। आधुनिक भारत कई राजतंत्रों के समग्र विलय से बना गणराज्य है। भाषाई आधार पर प्रशासनिक इकाइयों के रूप में इसके कई राज्य बने हैं, जो समेकित रूप में भारत को एक संघ बनाते हैं। इन राज्यों एवं संघ की सरकार, आम जनता के बहुमत से चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा बनी होती है, इसलिए यह संघीय लोकतंत्र भी है।

चुनावी टिकट का गणित

मैं तीन लोकतंत्रों– भारत, अमेरिका और कनाडा में रहा और इन देशों में जनप्रतिनिधियों की निर्वाचन पद्धतियों को गौर से देखा। अमेरिका के तीन आमचुनावों में मैंने कैलिफोर्निया राज्य के मतदाताओं की मदद के लिए सूचना गाइडों को हिंदी में तैयार करने हेतु काम किया। मैंने पाया कि आमचुनावों में नीतिगत मुद्दों पर सार्थक बहस की अमेरिका में सुदृढ़ परंपरा है। कई विकसित लोकतांत्रिक देश रेवड़ियाँ बाँटने की बजाय मुद्दों पर समर्पित लोगों को उनकी नीतिगत प्रतिबद्धता के लिए चुनते हैं। अमेरिका, फ्रांस, इटली, अर्जेंटिना, दक्षिणी कोरिया आदि लोकतांत्रिक गणतंत्र देशों में, प्रतिद्वंद्वी राजनीतिक दल जनप्रतिनिधियों के चुनावी टिकट देने के लिए खुली लोकतांत्रिक पद्धति अपनाते हैं। इसमें राजनीतिक दल संसद या विधान सभा का अपना प्रत्याशी चुनने के लिए भी प्राथमिक चुनाव करवाते हैं। ये प्राथमिक चुनाव राज्य की देखरेख में होते हैं। इनमें पंजीकृत मतदाता, पार्टी के प्रति अपनी संबद्धता या अनिर्णय घोषित कर अपनी पसंद के प्रत्याशी को चुनते हैं। राजनीतिक पार्टी ऐसे बहुमत के आधार पर उस व्यक्ति को आमचुनाव में अपना प्रत्याशी बनाती

है। कनाडा, यूके आदि देशों में राजनीतिक दलों द्वारा अपने टिकट प्राथमिक चुनाव के आधार पर ही दिए जाते हैं। लेकिन ये प्राथमिक चुनाव संबंधित पार्टी खुद करवाती है। प्राथमिक चुनाव में पार्टी के पंजीकृत सदस्य ही अपने क्षेत्र के उम्मीदवार का चयन या नामांकन करते हैं। इस तरह इन देशों में पार्टी के क्षेत्रीय सदस्यों की राय के बहुमत निर्णय के आधार पर पार्टी का नामांकन मिलता है। चुनाव की इन 'प्राथमिकी' पद्धतियों के कारण बाहरी व्यक्ति या राजनीतिक पार्टी द्वारा अपने 'खास व्यक्ति' को जनता पर थोपना संभव नहीं हो पाता। अमेरिका में एक सामान्य कार्यकर्ता के लिए अपने क्षेत्र में किए गए कार्यों और अपनी निजी लोकप्रियता के आधार पर प्राथमिक चुनाव लड़ कर किसी पार्टी का टिकट पाना आसान है तो कनाडा जैसे देशों में पार्टी के स्थानीय सदस्यों से सुपरिचित स्थानीय सदस्य को टिकट मिलना संभव हो पाता है।

भारत की स्थिति निराली है। यहाँ किसी राजनीतिक पार्टी के कुछ प्रमुख लोग अपनी पसंद के व्यक्ति को किसी भी क्षेत्र से उम्मीदवारी का टिकट दे देते हैं। ऐसे चयन में स्थानीय मतदाताओं या पार्टी के आम कार्यकर्ताओं की पसंदगी का बहुमत अधिक मायने नहीं रखता। इसके चलते खानदान, जात-बिरादरी और प्रमुख व्यक्ति के प्रति असंदिग्ध वफादारी आदि संभावित उम्मीदवार के चयन का मुख्य कारक बन जाते हैं। इस तरह एक ही परिवार के तीन या अधिक व्यक्तियों का एक साथ सांसद बन जाना संभव हो जाता है। राजनीतिक दलों द्वारा अपने पिट्ठूओं को संसद या विधानसभाओं में भेजने की यह प्रथा लोकतांत्रिक पद्धति का आधा-अधूरा अनुसरण है। भारत जैसे देशों में कुछ राजनीतिक दल बाहरी लोगों और बाहुबलियों को अपनी उम्मीदवारी का टिकट बेच देते हैं या अपना खास उम्मीदवार जनता पर थोप देते हैं और जमीनी कार्यकर्ता मुँह ताकते रह जाता है। राजनीतिक दलों द्वारा बंद दरवाजे से टिकट बाँटने की इस पद्धति के कारण किसी राजनीतिक दल को किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के समूह द्वारा अपनी निजी संपत्ति बना लेना आसान हो जाता है। यह एक परिपक्व लोकतंत्र के लिए श्रेयस्कर स्थिति नहीं है।

चुनावों में विदेशी हस्तक्षेप

पिछली सदी से जारी वैश्वीकरण के प्रसार के कारण हर विकसित देश में प्रवासियों का आगमन हुआ है। भारत, चीन समेत कई देशों के नागरिकों ने समृद्ध पश्चिमी देशों जैसे अमेरिका, यूके, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में आप्रवास किया एवं वहाँ की कानूनन नागरिकता प्राप्त की। इन देशों के कई प्रमुख शहरों में खासकर भारतवंशियों और चीनवंशियों ने अपनी अधिक संख्या के कारण स्थानीय राजनीति में सक्रियता से जगह बनाई। अब स्थिति यह है कि प्रवासी भारतीय और प्रवासी चीनी अर्थपूर्ण संख्या में इन देशों की संसद में सांसद और सरकारों में मंत्री आदि बनने लगे हैं। यह स्वाभाविक, विधि सम्मत और स्वागत योग्य लोकतांत्रिक प्रक्रिया है। इसका दूसरा पहलू चिंताजनक है। आप्रवासन के इस विस्तार के कारण रूस, चीन, भारत, ईरान, लेबनान, सीरिया, इजराइल आदि कुछ देशों द्वारा विकसित देशों खासकर अमेरिका, यूके, आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि की सरकारों में अपने पक्ष में 'लॉबिंग' कराना संभव हो सका है। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि रूस और चीन पर अमेरिका समेत कुछ अन्य देशों की लोकतांत्रिक चुनावी प्रक्रिया में 'हस्तक्षेप' के आरोप लगने लगे हैं। इन आरोपों में अपने समर्थित उम्मीदवारों के लिए गुप्त तरीकों से धन पहुँचाने, विपक्षियों की जासूसी करने, चुनावी साधनों को 'हैक' करने और इस तरह विदेशी सरकारों को प्रभावित करने जैसे आरोप शामिल हैं। इसके उलट अमेरिका जैसे 'सुपर पॉवर' देश और नॉटो के सदस्य देशों द्वारा अन्य देशों की निर्वाचित सरकारों को अपने इशारों पर चलाने या उनके विरोधियों के लिए मुश्किलें खड़ी करने के आरोप भी लगते रहे हैं। कुल मिलाकर संप्रभु देशों की निर्वाचित लोकतांत्रिक सरकारों को विदेशी शक्तियों के प्रभाव से मुक्त रख पाना चुनौती बनता जा रहा है। अमेरिका, यूरोप, मुस्लिम देश, रुस-चीन आदि की साम्यवादी व्यवस्थाएँ अपने गुटों का ध्रुवीकरण कर रही हैं। ऐसे में भारत जैसे निर्गुट देश विश्व को राजनीतिक संतुलन की धुरी पर बनाये रखने की सफल कोशिश में लगे हैं। विश्व में लोकतंत्र जितने मजबूत होंगे, मानवता उतनी सुरक्षित रहेगी।

लोकतांत्रिक देशों के लिए नई चुनौतियाँ

लोकतंत्र से अपेक्षा की जाती है कि आमजनता को मतदान का समान अधिकार मिले। कुछ लोकतंत्रों में इस मताधिकार को कमतर करने के प्रयत्न उन देशों के विभिन्न राजनीतिक दल करने लगे हैं। इसके लिए वे 'गलत मुद्दों पर ध्रुवीकरण' को प्रश्रय देते हैं। अमेरिका जैसे देशो में 'व्हाइट सुप्रीमेसी' के नाम पर गोरे लोगों में श्रेष्ठता का भाव उभार कर उन्हें अपने पक्ष में लामबंद करना या सामाजिक शोषण और पिछड़ेपन के लिए 'ऊँची जाति' को 'शोषक' घोषित कर उनके विरुद्ध शोषित और दलितों को जातिगत आधार पर संगठित करना। पश्चिमी देशों में रंगभेद, मुस्लिम देशों में धार्मिक कट्टरपन, भारत जैसे देशों में जातिगत वैमनस्य आदि भावनात्मक मुद्दों से 'खेलने' की राजनीतिक प्रवृत्तियाँ लोकतंत्र के आधार को कमजोर बनाती हैं। अशिक्षा, गरीबी, सामाजिक कुरीतियों जैसे मुद्दों पर मतदाताओं का यदि ध्रुवीकरण हो पाता तो वह निश्चित ही लोकतंत्र के लिए बेहतर होता। श्रेष्ठता के भाव को छोड़ने और सांस्कृतिक विरासत के दंभपूर्ण गर्व के स्थान पर आमजनता में सहिष्णुता और सहकार स्थापित करने की राजनीतिक इच्छा शक्ति लोकतंत्रों को जनसामान्य के लिए विश्वसनीय और कल्याणकारी व्यवस्था बना सकती है।

रेवड़ियाँ लोकतंत्र के लिए घातक

हाल ही में अमेरिका में अपनी पार्टी के पक्ष में मतदाताओं को लुभाने के लिए एलॉन मस्क द्वारा ढाई सौ मिलियन डॉलर लॉटरी के द्वारा दिए जाने या कनाडा में उसकी प्रांतीय सरकारों द्वारा चुनाव पूर्व हर करदाता को दो सौ डॉलर का सरकारी खजाने से चेक भेजे जाने की विधि ने मतदाताओं को कानूनी तौर पर मान्य ढंग से लालच देने के रास्ते खोले हैं। भारत में अपनी सरकार बनने पर महिलाओं को मासिक अनुग्रह राशि देने की घोषणा हर राजनीतिक दल ने बढ़-चढ़ कर की है। 'मतदान' को 'मतक्रय' में बदलने की इस प्रवृत्ति से वास्तविक जनप्रतिनिधि का चुनाव कर पाना संभव नहीं हो पाता। धन वितरण के ये लुभावने प्रयत्न लोकतंत्र की अवधारणा को ही समाप्त कर रहे हैं।

मिठाईवाला

भगवती प्रसाद वाजपेयी

एक

बहुत ही मीठे स्वरों के साथ वह गलियों में घूमता हुआ कहता—बच्चों को बहलानेवाला, खिलौनेवाला।

इस अधूरे वाक्य को वह ऐसे विचित्र किंतु मादक-मधुर ढंग से गाकर कहता कि सुनने वाले एक बार अस्थिर हो उठते। उनके स्नेहाभिषिक्त कंठ से फूटा हुआ उपयुक्त गान सुनकर निकट के मकानों में हलचल मच जाती। छोटे-छोटे बच्चों को अपनी गोद में लिए युवतियाँ चिकों को उठाकर छज्जों पर नीचे झाँकने लगतीं। गलियों और उनके अंतर्व्यापी छोटे-छोटे उद्यानों में खेलते और इठलाते हुए बच्चों का झुंड उसे घेर लेता और तब वह खिलौनेवाला वहीं बैठकर खिलौने की पेटी खोल देता।

बच्चे खिलौने देखकर पुलकित हो उठते। वे पैसे लाकर खिलौने का मोल-भाव करने लगते। पूछते—इछका दाम क्या है, औल इछका? औल इछका? खिलौने वाला बच्चों को देखता, और उनकी नन्हीं-नन्हीं उँगलियों से पैसे ले लेता, और बच्चों की इच्छानुसार उन्हें खिलौने दे देता। खिलौने लेकर फिर बच्चे उछलने-कूदने लगते और तब फिर खिलौनेवाला उसी प्रकार गाकर कहता—बच्चों को बहलानेवाला, खिलौनेवाला। सागर की हिलोर की भाँति उसका यह मादक गान गली भर के मकानों में इस ओर से उस ओर तक, लहराता हुआ पहुँचता, और खिलौनेवाला आगे बढ़ जाता।

राय विजयबहादुर के बच्चे भी एक दिन खिलौने लेकर घर आए! वे दो बच्चे थे—चुन्नू और मुन्नू! चुन्नू जब खिलौने ले आया, तो बोला—मेला घोला कैछा छुन्दल ऐ?

मुन्नू बोला—औल देखो, मेला कैछा छुन्दल ऐ?

दोनों अपने हाथी-घोड़े लेकर घर भर में उछलने लगे। इन बच्चों की माँ रोहिणी कुछ देर तक खड़े-खड़े उनका खेल निरखती रही। अंत में दोनों बच्चों को बुलाकर उसने पूछा—अरे ओ चुन्नू-मुन्नू, ये खिलौने तुमने कितने में लिए है?

मुन्नू बोला—दो पैछे में! खिलौनेवाला दे गया ऐ।

रोहिणी सोचने लगी—इतने सस्ते कैसे दे गया है? कैसे दे गया है, यह तो वही जाने। लेकिन दे तो गया ही है, इतना तो निश्चय है!

एक ज़रा-सी बात ठहरी। रोहिणी अपने काम में लग गई। फिर कभी उसे इस पर विचार की आवश्यकता भी भला क्यों पड़ती।

दो

छह महीने बाद।

नगर भर में दो-चार दिनों से एक मुरलीवाले के आने का समाचार फैल गया। लोग कहने लगे—भाई वाह! मुरली बजाने में वह एक ही उस्ताद है। मुरली बजाकर, गाना सुनाकर वह मुरली बेचता भी

है सो भी दो-दो पैसे भला, इसमें उसे क्या मिलता होगा। मेहनत भी तो न आती होगी!

एक व्यक्ति ने पूछ लिया—कैसा है वह मुरलीवाला, मैंने तो उसे नही देखा!

उत्तर मिला—उम्र तो उसकी अभी अधिक न होगी, यही तीस-बत्तीस का होगा। दुबला-पतला गोरा युवक है, बीकानेरी रंगीन साफ़ा बाँधता है।

वही तो नहीं, जो पहले खिलौने बेचा करता था?

क्या वह पहले खिलौने भी बेचा करता था?'

हाँ, जो आकार-प्रकार तुमने बतलाया, उसी प्रकार का वह भी था।

तो वही होगा। पर भई, है वह एक उस्ताद।

प्रतिदिन इसी प्रकार उस मुरलीवाले की चर्चा होती। प्रतिदिन नगर की प्रत्येक गली में उसका मादक, मृदुल स्वर सुनाई पड़ता—बच्चों को बहलानेवाला, मुरलियावाला।

रोहिणी ने भी मुरलीवाले का यह स्वर सुना। तुरंत ही उसे खिलौनेवाले का स्मरण हो आया। उसने मन0 ही मन कहा—खिलौनेवाला भी इसी तरह गा-गाकर खिलौने बेचा करता था।

रोहिणी उठकर अपने पति विजय बाबू के पास गई—ज़रा उस मुरलीवाले को बुलाओ तो, चुन्नू-मुन्नू के लिए ले लूँ। क्या पता यह फिर इधर आए, न आए। वे भी, जान पड़ता है, पार्क में खेलने निकल गए है।

विजय बाबू एक समाचार पत्र पढ़ रहे थे। उसी तरह उसे लिए

हुए वे दरवाज़े पर आकर मुरलीवाले से बोले—क्यों भई, किस तरह देते हो मुरली?

किसी की टोपी गली में गिर पड़ी। किसी का जूता पार्क में ही छूट गया, और किसी की सोथनी (पाजामा) ही ढीली होकर लटक आई है। इस तरह दौड़ते-हाँफ़ते हुए बच्चों का झुंड आ पहुँचा। एक स्वर से सब बोल उठे—अम बी लेंदे मुल्ली, और अम बी लेंदे मुल्ली।

मुरलीवाला हर्ष-गद्गद हो उठा। बोला—देंगे भैया! लेकिन ज़रा रुको, ठहरो, एक-एक को देने दो। अभी इतनी जल्दी हम कहीं लौट थोड़े ही जाएँगे। बेचने तो आए ही हैं, और हैं भी इस समय मेरे पास एक-दो नहीं, पूरी सत्तावन।...हाँ, बाबूजी, क्या पूछा था आपने कितने में दीं!...दी तो वैसे तीन-तीन पैसे के हिसाब से है, पर आपको दो-दो पैसे में ही दे दूँगा।

विजय बाबू भीतर-बाहर दोनों रूपों में मुस्करा दिए। मन ही मन कहने लगे—कैसा ठग है। देता तो सबको इसी भाव से है, पर मुझ पर उलटा एहसान लाद रहा है। फिर बोले—तुम लोगों की झूठ बोलने की आदत होती है। देते होगे सभी को दो-दो पैसे में, पर एहसान का बोझा मेरे ही ऊपर लाद रहे हो।

मुरलीवाला एकदम अप्रतिभ हो उठा। बोला—आपको क्या पता बाबू जी कि इनकी असली लागत क्या है। यह तो ग्राहकों का दस्तूर होता है कि दुकानदार चाहे हानि उठाकर चीज़ क्यों न बेचे, पर ग्राहक यही समझते हैं—दुकानदार मुझे लूट रहा है। आप भला काहे को विश्वास करेंगे? लेकिन सच पूछिए तो बाबूजी, असली दाम दो ही पैसा है। आप कहीं से दो पैसे में ये मुरलियाँ नहीं पा सकते। मैंने तो पूरी एक हज़ार बनवाई थीं, तब मुझे इस भाव पड़ी हैं।

विजय बाबू बोले—अच्छा, मुझे ज़्यादा वक़्त नहीं, जल्दी से दो ठो निकाल दो।

दो मुरलियाँ लेकर विजय बाबू फिर मकान के भीतर पहुँच गए। मुरलीवाला देर तक उन बच्चों के झुंड में मुरलियाँ बेचता रहा। उसके पास कई रंग की मुरलियाँ थीं। बच्चे जो रंग पसंद करते, मुरलीवाला उसी रंग की मुरली निकाल देता।

यह बड़ी अच्छी मुरली है। तुम यही ले लो बाबू, राजा बाबू तुम्हारे लायक तो बस यह है। हाँ भैये, तुमको वही देंगे। ये लो।... तुमको वैसी न चाहिए, यह नारंगी रंग की, अच्छा वही लो।....ले आए पैसे? अच्छा, ये लो तुम्हारे लिए मैंने पहले ही निकाल रखी थी...! तुमको पैसे नहीं मिले। तुमने अम्मा से ठीक तरह माँगे न होंगे। धोती पकड़कर पैरों में लिपटकर, अम्मा से पैसे माँगे जाते हैं बाबू! हाँ, फिर जाओ। अबकी बार मिल जाएँगे...। दुअन्नी है? तो क्या हुआ, ये लो पैसे वापस लो। ठीक हो गया न हिसाब?....मिल गए पैसे? देखो, मैंने तरक़ीब बताई! अच्छा अब तो किसी को नहीं लेना है? सब ले चुके? तुम्हारी माँ के पैसे नहीं हैं? अच्छा, तुम भी यह लो। अच्छा, तो अब मैं चलता हूँ।

इस तरह मुरलीवाला फिर आगे बढ़ गया।

तीन

आज अपने मकान में बैठी हुई रोहिणी मुरलीवाले की सारी बातें सुनती रही। आज भी उसने अनुभव किया, बच्चों के साथ इतने प्यार से बातें करने वाला फेरीवाला पहले कभी नहीं आया। फिर यह सौदा भी कैसा सस्ता बेचता है! भला आदमी जान पड़ता है। समय की बात है, जो बेचारा इस तरह मारा-मारा फिरता है। पेट जो न कराए, सो थोड़ा!

इसी समय मुरलीवाले का क्षीण स्वर दूसरी निकट की गली से सुनाई पड़ा—बच्चों को बहलानेवाला, मुरलियावाला!

रोहिणी इसे सुनकर मन ही मन कहने लगी—और स्वर कैसा मीठा है इसका!

बहुत दिनों तक रोहिणी को मुरलीवाले का वह मीठा स्वर और उसकी बच्चों के प्रति वे स्नेहसिक्त बातें याद आती रहीं। महीने के महीने आए और चले गए। फिर मुरलीवाला न आया। धीरे-धीरे उसकी स्मृति भी क्षीण हो गई।

चार

आठ मास बाद—

सर्दी के दिन थे। रोहिणी स्नान करके मकान की छत पर चढ़कर आजानुलंबित केश-राशि सुखा रही थी। इसी समय नीचे की गली में सुनाई पड़ा—बच्चों को बहलानेवाला, मिठाईवाला।

मिठाईवाले का स्वर उसके लिए परिचित था, झट से रोहिणी नीचे उतर आई। उस समय उसके पति मकान में नहीं थे। हाँ, उनकी वृद्धा दादी थीं। रोहिणी उनके निकट आकर बोली—दादी, चुन्नू-मुन्नू के लिए मिठाई लेनी है। ज़रा कमरे में चलकर ठहराओ। मैं उधर कैसे जाऊँ, कोई आता न हो। ज़रा हटकर मैं भी चिक की ओट में बैठी रहूँगी।

दादी उठकर कमरे में आकर बोलीं—ए मिठाईवाले, इधर आना।

मिठाईवाला निकट आ गया। बोला—कितनी मिठाई दूँ, माँ? ये नए तरह की मिठाइयाँ हैं—रंग-बिरंगी, कुछ-कुछ खट्टी, कुछ-कुछ मीठी, ज़ायकेदार, बड़ी देर तक मुँह में टिकती हैं। जल्दी नहीं घुलतीं। बच्चे बड़े चाव से चूसते हैं। इन गुणों के सिवा ये खाँसी भी दूर करती हैं! कितनी दूँ? चपटी, गोल, पहलदार गोलियाँ हैं। पैसे की सोलह देता हूँ।

दादी बोलीं—सोलह तो बहुत कम होती हैं, भला पचीस तो देते।

मिठाईवाला—नहीं दादी, अधिक नहीं दे सकता। इतना भी देता हूँ, यह अब मैं तुम्हें क्या...ख़ैर, मैं अधिक न दे सकूँगा।

रोहिणी दादी के पास ही थी। बोली—दादी, फिर भी काफ़ी सस्ता दे रहा है। चार पैसे की ले लो। यह पैसे रहे।

मिठाईवाला मिठाइयाँ गिनने लगा।

तो चार की दे दो। अच्छा, पचीस नहीं सही, बीस ही दो। अरे हाँ, मैं बूढ़ी हुई मोल-भाव अब मुझे ज़्यादा करना आता भी नहीं।

कहते हुए दादी के पोपले मुँह से ज़रा-सी मुस्कुराहट फूट निकली।

रोहिणी ने दादी से कहा—दादी, इससे पूछो, तुम इस शहर में और भी कभी आए थे या पहली बार आए हो? यहाँ के निवासी तो तुम हो नहीं।

दादी ने इस कथन को दोहराने की चेष्टा की ही थी कि मिठाईवाले ने उत्तर दिया—पहली बार नहीं, और भी कई बार आ चुका हूँ।

रोहिणी चिक की आड़ ही से बोली—पहले यही मिठाई बेचते हुए आए थे, या और कोई चीज़ लेकर?

मिठाईवाला हर्ष, संशय और विस्मयादि भावों मे डूबकर बोला— इससे पहले मुरली लेकर आया था, और उससे भी पहले खिलौने लेकर।

रोहिणी का अनुमान ठीक निकला। अब तो वह उससे और भी कुछ बातें पूछने के लिए अस्थिर हो उठी। वह बोली—इन व्यवसायों में भला तुम्हें क्या मिलता होगा?

वह बोला—मिलता भला क्या है! यही खाने भर को मिल जाता है। कभी नहीं भी मिलता है। पर हाँ; संतोष, धीरज और कभी-कभी असीम सुख ज़रूर मिलता है और यही मैं चाहता भी हूँ।

सो कैसे? वह भी बताओ।

अब व्यर्थ उन बातों की क्यों चर्चा करूँ? उन्हें आप जाने ही दें। उन बातों को सुनकर आप को दुःख ही होगा।

जब इतना बताया है, तब और भी बता दो। मैं बहुत उत्सुक हूँ। तुम्हारा हरजा न होगा। मिठाई मैं और भी कुछ ले लूँगी।

अतिशय गंभीरता के साथ मिठाईवाले ने कहा—मैं भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान-व्यवसाय, गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर सभी कुछ था। स्त्री थी, छोटे-छोटे दो बच्चे भी थे। मेरा वह सोने का संसार था। बाहर संपत्ति का वैभव था, भीतर सांसारिक सुख था। स्त्री सुंदरी थी, मेरी प्राण थी। बच्चे ऐसे सुंदर थे, जैसे सोने के सजीव खिलौने। उनकी अठखेलियों के मारे घर में कोलाहल मचा रहता था। समय की गति! विधाता की लीला। अब कोई नहीं है। दादी, प्राण निकाले नहीं निकले। इसलिए अपने उन बच्चों की खोज में निकला हूँ। वे सब अंत में होंगे, तो यहीं कहीं। आख़िर, कहीं न जन्मे ही होंगे। उस तरह रहता, घुल-घुलकर मरता। इस तरह सुख-संतोष के साथ मरूँगा। इस तरह के जीवन में कभी-कभी अपने उन बच्चों की एक झलक-सी मिल जाती है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे इन्हीं में उछल-उछलकर हँस-खेल रहे हैं। पैसों की कमी थोड़े ही है, आपकी दया से पैसे तो काफ़ी हैं। जो नहीं है, इस तरह उसी को पा जाता हूँ।

रोहिणी ने अब मिठाईवाले की ओर देखा—उसकी आँखें आँसुओं से तर हैं।

इसी समय चुन्नू-मुन्नू आ गए। रोहिणी से लिपटकर, उसका आँचल पकड़कर बोले—अम्माँ, मिठाई!

मुझसे लो। यह कहकर, तत्काल काग़ज़ की दो पुड़ियाँ, मिठाइयों से भरी, मिठाईवाले ने चुन्नू-मुन्नू को दे दीं!

रोहिणी ने भीतर से पैसे फेंक दिए।

मिठाईवाले ने पेटी उठाई, और कहा—अब इस बार ये पैसे न लूँगा।

दादी बोली—अरे-अरे, न न, अपने पैसे लिए जा भाई!

तब तक आगे फिर सुनाई पड़ा उसी प्रकार मादक-मृदुल स्वर में—बच्चों को बहलानेवाला मिठाईवाला।

गीत :

समय का प्रश्न : कौन?

मदन लाल शर्मा
(वरिष्ठ कवि, उपन्यासकार और अधिवक्ता)

अर्जुन का रथ रुका हुआ है, घर घर में रावण बैठा है।
गीता कौन खरीदेगा अब, रामायण को कौन पढ़ेगा?
बहती गंगा, बहती जमुना
दोनों का जल केवल पानी
जिसको हम अमृत कहते थे
बनी जा रही एक कहानी
मानव का पानी से रिश्ता, केवल भौतिकवाद नहीं है
यदि हम यों ही रहे सोचते, फिर भागीरथ कौन बनेगा?

रात ढली औ' भोर हो गई
सूरज निकला हुआ सबेरा
ढलता सूरज दोपहरी में
साँझ पड़ी फिर वही अँधेरा
सुबह-शाम से सत्कर्मों का, रिश्ता जब तक नहीं जोड़ते
कौन करेगा ईश्वर चिंतन, सन्ध्या वंदन कौन करेगा?

खिला हुआ है सुन्दर उपवन
महक रही है क्यारी-क्यारी
आमंत्रण देती मौसम को
रजनीगन्धा निपट कुँवारी
यह कैसा उत्सव है यारो, सारी बस्ती ही बाराती
सब ही हैं मेहमान यहाँ तो फिर अभिनंदन कौन करेगा?

भले-बुरे का भेद जानना
बहुत कठिन है, बहुत सरल है
जैसे बर्फ बनी पानी से
एक ठोस है, एक तरल है।
गड़ा हुआ है धन धरती में, रखा हुआ अमृत घट नीचे
सभी सोमरस पीने वाले सागर-मंथन कौन करेगा ?

थकी हुई है बूढ़ी पीढ़ी
वह कैसा निर्माण करेगी
रीती गागर ले पनिहारिन
कैसे जल का दान करेगी
बंजारा मन पूछ रहा है, बस्ती के पहरेदारों से
असमंजस में भावी पीढ़ी युग-परिवर्तन कौन करेगा?

वे दिन : वे लोग

न लेना, न देना : मगन रहना

बींजूसर राजस्थान के शेखावाटी अञ्चल का एक छोटा सा गाँव है। विगत शताब्दी के प्रारंभ में यहाँ किसानी करने वाले एक उदार और परोपकारी वैश्य सज्जन हुए हैं– दुर्गा प्रसाद केडिया। इनके छोटे भाई व्यवसाय के लिए हैदराबाद चले गए और वहाँ से नियमित रूप से धनराशि भेजते थे जिसके अधिकांश का उपयोग दुर्गा प्रसाद गोसेवा, गाँव में निःशुल्क चिकित्सा सेवा, जलसेवा और निर्धनों की कन्याओं के विवाह में सहयोग देकर करते थे।

इनके निधन के बाद इनके भाई रामनाराण ने हैदराबाद से अक्सर गाँव आना शुरू कर दिया और गाँव के लोगों की सेवा का काम जारी रखा।

हैदराबाद में इनकी एक शुगर मिल बंद पड़ी थी। मिल के पास 12 एकड़ जमीन थी और साथ ही अनेक भवन और गोदाम भी। स्थानीय सरपंच और विधायक ने कॉलेज बनाने के लिए जब इस स्थान की मांग की तो राम नारायण ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। आज यह आंध्र प्रदेश का दूसरा सबसे बड़ा सहशिक्षा कॉलेज है।

इनका परिवार गाँव के लोगों को बिना ब्याज के ऋण देने का सेवाकार्य भी करता था। कुछ वर्षों बाद इनकी माता का भी निधन हो गया। माता के निधन के बारहवें दिन सभी कर्मकांड पूरे करने के बाद राम नारायण ने सभी कर्जदारों को बुलाया और उनके सामने उन तमाम बहियों को फाड़ दिया जिनमें कर्ज का हिसाब लिखा हुआ था।

यह रकम 30 लाख रुपए थी।

(संकलन : शिवांगी जोशी : संदर्भ– मरुधरा के शिक्षानुरागी सेठ)

बनारस पर फ़िदा ग़ालिब

ग़ालिब का बनारस से यह प्रेम चिराग़-ए-दैर नामक उनकी किताब में स्पष्ट दिख़ाई देता है। जिसका सादिक़ ने हिन्दी अनुवाद भी किया है। ग़ालिब को मौलवी मोहम्मद अली खां को ख़त में यह भी लिखते हैं कि बनारस आने और यहाँ रहने के बाद इस मक़ाम से उनकी अज़नबियत ख़त्म हो गई है। यहाँ के मंदिरों में बजाये जाने वाले शंखों की आवाज़ों को सुनकर वे ख़ुशी महसूस करते हैं। अब उन्हें अपनी कर्मभूमि देहली की याद नहीं आती।

यही नहीं ग़ालिब ने यह भी लिखा है कि अगर मुझे दुश्मनों की शमातत का ख़ौफ़ नहीं होता तो मैं अपना मज़हब तर्क करके माथे पर तिलक लगा लेता, जनेऊ धारण करता और इसी भेष में गंगा किनारे जा बैठता और उस समय तक वहीं बैठा रहता जब तक कि ज़िंदगी भर के गुनाहों की ग़र्त न धुल जाती और जल के एक क़तरे की तरह गंगा में न मिल जाता यानि उनकी आत्मा ब्रह्मलीन न हो जाती।

न होता अगर ख़ौफ़-ए-शमातत दुश्मन
तो ग़ालिब मैं पेशानी पे घिसता चंदन

बधाई

भारत मूल के प्रो. स्नेह खेमका को स्वास्थ्य सेवाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए जनवरी 2025 में ब्रिटेन के सी बी ई सम्मान (Commander of the Order of the British Empire) के लिए नामित किया गया है।

भारत की अंडर 19 महिला टीम ने टी-20 का वर्ल्ड कप जीता

2025 के ग्रैमी अवार्ड्स में, भारतीय-अमेरिकी गायिका और उद्यमी चंद्रिका टंडन ने अपने एल्बम त्रिवेणी (संस्कृत मंत्रों वाले) के लिए बेस्ट न्यू एज, एम्बिएंट या चैंट एल्बम के लिए ग्रैमी जीता। उन्होंने एल्बम में अपने काम के लिए सहयोगी वाउटर केलरमैन और इरु मात्सुमोतो के साथ मिलकर इतिहास रच दिया।

आबे ज़मज़म और गंगा

आबे ज़मज़म से कहा मैंने मिला गंगा से क्यों
क्यों तेरी नीयत में इतनी नातवानी (अक्षमता) आ गई?

वह लगा कहने कि हज़रत! आप देखें तो ज़रा
बन्द था शीशी में, अब मुझमें रवानी आ गई **–अकबर इलाहाबादी**

भारत की खोज : पहली दो कड़ियाँ

(भारत एक संश्लिष्ट सांस्कृतिक इकाई के रूप में अत्यंत प्राचीन, जीवंत और गतिशील उपमहाद्वीप रहा है जिसने अपनी मेधा से विश्व को चमत्कृत और समृद्ध किया है। जहाँ तक राजनीति की बात है तो यहाँ अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग साम्राज्य रहे जिनका वैसा ही इतिहास रहा जैसा अलग अलग देशों का होता है– संघर्ष का, विमर्श का और सहयोग का। ब्रिटिश शासन काल में इसे एक राजनीतिक रूप से संगठित इकाई का स्वरूप मिला जिसे हम अपने देश भारत, हिंदुस्तान और इंडिया के नाम से जानते हैं। जो आज भी अपनी पुरातनता और नवीनता, एकता और अनेकता के अद्भुत संगम के कारण विश्व के लिए एक आश्चर्य है।

इसे समग्रता में देखना, समझना और समेटना सरल नहीं। इसकी सफल और प्रामाणिक कोशिश की पंडित जवाहरलाल नेहरू ने और नाम दिया– 'भारत की खोज'। इसका लेखन उन्होंने भारत के स्वाधीनता आंदोलन में अंग्रेज सरकार द्वारा अहमदनगर किले में जेल रखे जाने के दौरान किया। आज भी भारत को समझने के लिए यह पुस्तक विश्व में समादृत है।

सामान्य पाठकों विशेषकर किशोरों के लिए इसका सार्थक और सरल संक्षिप्तीकरण किया हिन्दी की वरिष्ठ समालोचक और साहित्यकार डॉ. निर्मला जैन ने। हम उनका आभार स्वीकार करते हुए इसे विश्वा के युवा पाठकों के लिए धारावाहिक रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। –सं.)

एक : अहमदनगर का किला

13 अप्रैल 1944

यह मेरी नौवीं जेलयात्रा थी। हमें यहाँ आए बीस महीने से भी अधिक समय हो चुका था। जब हम यहाँ पहुँचे तो अँधियारे आकाश में झिलमिलाते दूज के चाँद ने हमारा स्वागत किया। शुक्ल-पक्ष शुरू हो चुका था। तब से हर बार जब नया चाँद उगता है तो जैसे मुझे याद दिला जाता है कि मेरे कारावास का एक महीना और बीत गया। चाँद मेरे बंदी जीवन का स्थायी सहचर रहा है। वही मुझे इस बात की याद दिलाता है कि अँधेरे के बाद उजाला होता है।

अतीत का भार

दूसरी जेलों की तरह, यहाँ अहमदनगर के किले में भी मैंने बागवानी करना शुरू कर दिया। मैं रोज़ कई घंटे तपती धूप में भी फूलों के लिए क्यारियाँ बनाने में बिताने लगा। मिट्टी बहुत खराब थी - पथरीली और पुराने मलबे और अवशेषों से भरी हुई। चूँकि यह इतिहास - स्थल है इसलिए अतीत में इसने कई युद्ध और राजमहलों की दुरभिसंधियाँ देखी हैं। यहाँ का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। घटनाओं की दृष्टि से इसकी कोई विशेष अहमियत भी नहीं है। पर इससे जुड़ी एक घटना, आज भी याद की जाती है। यह घटना है चाँद बीबी नाम की एक सुंदर महिला के साहस की कहानी, जिसने इस किले की रक्षा के लिए अकबर की शाही सेना के विरुद्ध, हाथ में तलवार उठाकर अपनी सेना का नेतृत्व किया। पर अंत में उसकी हत्या उसके अपने ही एक आदमी के हाथों हुई।

खुदाई के दौरान हमें ज़मीन की सतह के बहुत नीचे दबे हुए प्राचीन दीवारों के हिस्से और कुछ गुंबदों और इमारतों के ऊपरी हिस्से मिले। हम बहुत दूर नहीं जा सके क्योंकि न तो अधिकारियों से इसकी मंजूरी मिली और न ही हमारे पास इस काम को जारी रखने के साधन थे। अब मैंने कुदाल छोड़कर हाथ में कलम उठा ली है। पर मैं जब तक आज़ाद नहीं हो जाता और कर्म के माध्यम से वर्तमान को अपने अनुभव का हिस्सा नहीं बना लेता, मैं उसके बारे में नहीं लिख सकता। न ही पैगंबर की भूमिका अख्तियार कर मैं फ़िलहाल भविष्य के बारे में लिख सकता हूँ। बचा रहता है अतीत, पर मैं उसके बारे में भी किसी इतिहासकार या विद्वान की तरह विद्वत्तापूर्ण शैली में नहीं लिख सकता। मैं पहले की ही तरह, अपने आज के विचारों और क्रियाकलापों के साथ संबंध स्थापित करके ही उसके बारे में कुछ लिख सकता हूँ। गेटे ने एक बार कहा था कि इस तरह का इतिहास लेखन अतीत के भारी बोझ से एक सीमा तक राहत दिलाता है।

अतीत का दबाव

दबाव, भला हो या बुरा, दोनों तरह अभिभूत करता है। कभी-कभी यह दबाव दमघोंटू होता है– खास तौर पर उन लोगों के लिए जिनकी जड़ें बहुत पुरानी सभ्यताओं में होती हैं– मसलन भारत और चीन की सभ्यताएँ।

आखिर मेरी विरासत क्या है? मैं किन बातों का उत्तराधिकारी हूँ? क्या उन सबका जिसे मानवता ने दसियों हज़ारों साल के दौरान हासिल किया। उसकी विजयों के उल्लास का, उसकी पराजयों की दुखद यंत्रणा का, मानव के उन हैरतअंगेज़ साहसिक कार्यों का जिनकी

शुरुआत युगों पहले हुई और जो अब भी जारी हैं और हमें आकर्षित करती हैं। मैं इस सबका वारिस हूँ, साथ ही उस सबका भी जिसमें पूरी मानव जाति की साझेदारी है। हम भारतवासियों की विरासत में एक खास बात है, जो अनोखी नहीं है, क्योंकि कोई व्यक्ति औरों से एकदम अलग नहीं होता। अलबत्ता एक बात हम लोगों पर विशेष रूप से लागू होती है, जो हमारे रक्त, मांस और अस्थियों में समाई है। इसी विशेषता से हमारा वर्तमान रूप बना है और हमारा भावी रूप बनेगा।

इसी विशिष्ट विरासत का विचार और वर्तमान पर इसे लागू करने की बात एक लंबे अरसे से मेरे मन में घर किए है। मैं इसी के बारे में लिखना चाहता हूँ। विषय की कठिनाई और जटिलता मुझे भयभीत करती है। मुझे लगता है कि मैं सतही तौर पर इसका स्पर्श ही कर सकता हूँ।

तलाश

भारत के अतीत की झाँकी

बीते हुए सालों में मेरे मन में भारत ही भारत रहा है। इस बीच मैं बराबर उसे समझने और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करने की कोशिश करता रहा हूँ। मैंने बचपन की ओर लौटकर याद करने की कोशिश की कि मैं तब कैसा महसूस करता था, मेरे मन में इस अवधारणा ने कैसा धुँधला रूप ले लिया था और मेरे ताज़ा अनुभव ने उसे कैसे सँवारा था।

आखिर यह भारत है क्या? अतीत में यह किस विशेषता का प्रतिनिधित्व करता था? उसने अपनी प्राचीन शक्ति को कैसे खो दिया? क्या उसने इस शक्ति को पूरी तरह खो दिया है? विशाल जनसंख्या का बसेरा होने के अलावा क्या आज उसके पास ऐसा कुछ बचा है जिसे जानदार कहा जा सके? आधुनिक विश्व से उसका तालमेल किस रूप में बैठता है?

भारत मेरे खून में रचा-बसा था। इसके बावजूद मैंने उसे एक बाहरी आलोचक की नज़र से देखना शुरू किया। ऐसा आलोचक जो वर्तमान के साथ-साथ अतीत के बहुत से अवशेषों को, जिन्हें उसने देखा था– नापसंद करता था। एक हद तक मैं उस तक पश्चिम के रास्ते से होकर पहुँचा था । मैंने उसे उसी भाव से देखा जैसे संभवत: किसी पश्चिमी मित्र ने देखा होता। मेरे भीतर शंकाएँ सिर उठा रही थीं। क्या मैंने भारत को जान लिया था? मैं, जो उसके अतीत की विरासत के बड़े हिस्से को खारिज करने का साहस कर रहा था। लेकिन अगर भारत के पास वह कुछ नहीं होता जो बहुत जीवंत और टिकाऊ रहा है, वह बहुत कुछ जो सार्थक है, तो भारत का वजूद उस रूप में नहीं होता जैसा आज है और वह हज़ारों वर्ष तक अपने 'सभ्य' अस्तित्व की पहचान इस रूप में कदापि बनाए नहीं रख सकता था। वह 'विशेष' तत्व आखिर क्या था?

मैं भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित सिंधु घाटी में मोहनजोदड़ो के एक टीले पर खड़ा था। मेरे चारों तरफ़ उस प्राचीन नगर के घर और गलियाँ बिखरी थीं जिसका समय पाँच हज़ार वर्ष पहले बताया जाता है। साथ ही यह भी कहा जाता है कि वहाँ एक प्राचीन और पूर्णत: विकसित सभ्यता थी। इनके स्थायी रूप से टिके रहने का कारण है इसका ठेठ भारतीयपन और यही आधुनिक भारतीय सभ्यता का आधार है। यह विचार आश्चर्यचकित कर देता है कि कोई संस्कृति या सभ्यता इस प्रकार पाँच-छह हज़ार वर्ष या उससे भी कुछ अधिक समय तक निरंतर बनी रहे, वह भी बराबर परिवर्तनशील और विकासमान रहकर। फ़ारस, मिस्र, ग्रीस, चीन, अरब, मध्य एशिया और भू-मध्य सागर के लोगों से उसका बराबर निकट संपर्क रहा। यद्यपि भारत ने उन्हें प्रभावित किया और स्वयं भी उनसे प्रभावित हुआ, फिर भी उसका सांस्कृतिक आधार इतना मज़बूत था कि वह हिला नहीं। इस मज़बूती का रहस्य क्या है?

मैंने भारत का इतिहास और उसके विशाल प्राचीन साहित्य के कुछ अंशों को पढ़ा। मुझ पर विचारों की तेजस्विता, भाषा की स्पष्टता और उसके पीछे सक्रिय मस्तिष्क की समृद्धि ने गहरा प्रभाव डाला। मैंने उन पराक्रमी यात्रियों के साथ भारत की यात्रा की जो सुदूर अतीत में यहाँ चीन तथा पश्चिमी और मध्य एशिया से आए थे और अपनी यात्राओं की दास्तान छोड़ गए थे। मैं पूर्वी एशिया, अंगकोर, बोरोबुदुर और बहुत-सी जगहों में भारत की उपलब्धियों के बारे में सोचने लगा। मैं उस हिमालय पर घूमता रहा जिसका पुराने मिथकों और दंतकथाओं के साथ निकट संबंध है और जिसने हमारे विचारों और साहित्य को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। पहाड़ों के प्रति मेरे प्रेम ने और कश्मीर के साथ मेरे खून के रिश्ते ने मुझे उनकी ओर विशेष रूप से आकर्षित किया। इस महान पर्वत से निकलकर भारत के मैदानों में बहने वाली भारत की विशाल नदियों ने मुझे आकर्षित किया और इतिहास के अनगिनत पहलुओं की याद ताज़ा की। इंडस या सिंधु, जिसके आधार पर हमारे इस देश का नाम पड़ा 'इंडिया' और 'हिंदुस्तान', और जिसे पार करके हज़ारों वर्षों से यहाँ जातियाँ और कबीले, काफ़िले और फ़ौजें आती रही हैं। ब्रह्मपुत्र... इतिहास की मुख्यधारा से लगभग कटी हुई, पर पुरानी कहानियों में आज भी जीवित, उत्तरपूर्वी पहाड़ियों के हृदय में पड़ी गहरी दरारों के बीच से बरबस मार्ग बनाती हुई भारत में प्रवेश करती है और फिर पहाड़ों और जंगलों से भरे मैदान के बीच शांत रमणीय धारा के रूप में बहने लगती है। यमुना, जिसके चारों ओर नृत्य, और नाटक से संबद्ध न जाने कितनी पौराणिक कथाएँ एकत्र हैं। इन सबसे बढ़कर है, भारत की नदी गंगा, जिसने इतिहास के आरंभ से ही भारत के हृदय पर राज किया है और लाखों की तादाद में लोगों को अपने तटों की ओर खींचा है। प्राचीन काल से आधुनिक युग तक, गंगा की गाथा भारत की सभ्यता और संस्कृति की कहानी है।

मैंने पुराने स्मारकों और भग्नावशेषों को और पुरानी मूर्तियों और भित्ति चित्रों को देखा– अजंता एलोरा, ऐलिफेंटा की गुफ़ाओं और अन्य स्थानों को देखा। मैंने आगरा और दिल्ली में कुछ समय बाद बनी खूबसूरत इमारतों को भी देखा, जहाँ का प्रत्येक पत्थर भारत के अतीत की कहानी कह रहा था।

मैं अपने शहर इलाहाबाद में या फिर हरिद्वार में महान स्नान-पर्व कुंभ के मेले में जाता हूँ और देखता हूँ कि वहाँ अब भी सैकड़ों और

हज़ारों की तादाद में लोग आते हैं– वैसे ही जैसे हज़ारों वर्ष से उनके पुरखे गंगा-स्नान करने के लिए भारत के सभी कोनों से आते रहे हैं। मुझे तेरह सौ साल पहले चीनी यात्रियों और कुछ दूसरे लोगों द्वारा लिखे इन पर्वों के वर्णनों की याद आ जाती है, गोकि उस समय भी ये मेले पुराने पड़ चुके थे और अनजाने प्राचीन काल में गुम गए थे। मुझे हैरत होती थी, कि वह कौन-सी प्रबल आस्था थी जो हमारे लोगों को अनगिनत पीढ़ियों से भारत की इस प्रसिद्ध नदी की ओर खींचती रही है।

मेरे अध्ययन की पृष्ठभूमि के साथ इन यात्राओं और दौरों ने मिलकर मुझे अतीत में देखने की अंतर्दृष्टि दी। मेरे मन में भारत की जो तसवीर थी उसमें धीरे-धीरे सच्चाई का बोध घर करने लगा। मेरे पूर्वजों की भूमि में ऐसे जीते जागते लोग आबाद हो गए जो हँसते-रोते थे, प्यार करते थे और पीड़ा भोगते थे। इन्हीं में ऐसे लोग भी थे जिन्हें जिंदगी की जानकारी और समझ थी। इस अतीत के सैकड़ों सजीव चित्र मेरे मन में भरे थे। जब भी किसी जगह जाता था, उस विशेष स्थान से संबद्ध चित्र तत्काल मेरे सामने आ खड़ा होता था। बनारस के पास सारनाथ में मैंने बुद्ध को उनका पहला उपदेश देते हुए लगभग साफ़ देखा। ढाई हज़ार वर्ष का फ़ासला तय करके उनके कुछ अभिलिखित शब्द जैसे दूर से आती प्रतिध्वनि की तरह मुझे सुनाई पड़े। अशोक के पाषाण स्तंभ जैसे अपने शिलालेखों के माध्यम से मुझे एक ऐसे आदमी के बारे में बताते थे, जो खुद एक सम्राट होकर भी किसी अन्य राजा और सम्राट से महान था। फ़तेहपुर सीकरी में, अपने साम्राज्य को भुलाकर बैठा अकबर विभिन्न मतों के विद्वानों से संवाद और वाद-विवाद कर रहा था । वह जिज्ञासु भाव से मनुष्य की शाश्वत समस्याओं का हल तलाश कर रहा था।

इस तरह भारत के इतिहास की लंबी झाँकी अपने उतार-चढ़ावों के और विजय-पराजयों के साथ जैसे धीरे-धीरे मेरे सामने खुलती जा रही थी। मुझे इतिहास के पाँच हज़ार वर्षों से चली आ रही इस सांस्कृतिक परंपरा की निरंतरता में कुछ विलक्षणता प्रतीत होती है। यह परंपरा जो दूर-दूर तक जनता में फैली थी और जिसने उस पर गहरा प्रभाव डाला था।

भारत की शक्ति और सीमा

भारत की शक्ति के स्रोतों और उसके पतन और नाश के कारणों की खोज लंबी और उलझी हुई है। पर उसके पतन के हाल के कारण पर्याप्त स्पष्ट हैं। भारत तकनीक की दौड़ में पिछड़ गया और यूरोप जो तमाम बातों में एक ज़माने से पिछड़ा हुआ था, तकनीकी प्रगति के मामले में आगे निकल गया। इस तकनीकी विकास के पीछे विज्ञान की चेतना थी तथा हौसलामंद जीवनी शक्ति और मानसिकता थी। नयी तकनीकों ने पश्चिमी यूरोप के देशों को सैनिक बल दिया और उनके लिए अपना विस्तार करके पूरब पर अधिकार करना आसान हो गया। यह केवल भारत की ही नहीं, लगभग सारे एशिया की कहानी है।

ऐसा क्यों हुआ, इस गुत्थी को सुलझाना ज्यादा मुश्किल है क्योंकि पुराने समय में तो भारत में मानसिक सजगता और तकनीकी कौशल की कमी थी नहीं, किंतु बाद की सदियों में उत्तरोत्तर गिरावट का आभास होने लगता है। जीवन की लालसा और उद्यम में कमी आ जाती है। क्षीण होती रचनात्मक प्रवृत्ति की जगह अनुकरण की प्रवृत्ति ले लेती है। जहाँ कामयाबी के साथ विद्रोही विचार-पद्धति ने प्रकृति और ब्रह्मांड के रहस्यों को भेदने का प्रयास किया था, वहाँ शब्दाडंबर से लैस भाष्यकार उसकी जगह लेता दिखाई देने लगता है। भव्य कला और मूर्ति निर्माण का स्थान जटिल पच्चीकारी वाली सावधानी से की गई नक्काशी लेने लगी। प्रभावी किंतु सरल, सजीव और समृद्ध भाषा की जगह, अत्यंत अलंकृत और जटिल साहित्य शैली ने ले ली। साहसिक कार्यों की लालसा और छलकती हुई जिंदगी, जिसके कारण सुदूर देशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार संभव हो सका था, क्षीण हो चली और उसके स्थान पर महासागरों को पार करने पर रोक लगाने वाली संकीर्ण रूढ़िवादिता ने जन्म ले लिया। जाँच-पड़ताल की विवेकपूर्ण चेतना लुप्त होती गई और अतीत की अंधी मूर्तिपूजा ने उसकी जगह ली। अतीत के विकट भार ने उसे कुचल कर रख दिया और वह एक तरह की मूर्च्छा से ग्रस्त हो गई। मानसिक जड़ता और शारीरिक थकावट की इस हालत में भारत का ह्रास होने लगा। वह गतिहीन और जड़ हो गया जबकि विश्व के दूसरे हिस्से प्रगति के पथ पर बढ़ते गए।

किंतु यह स्थिति का पूरा और पूर्णत: सही सर्वेक्षण नहीं है। यदि केवल जड़ता और गतिहीनता का एकरस और लंबा दौर रहा होता, तो उसका नाता अतीत से पूरी तरह टूट जाता। एक युग का अंत और उसके ध्वंसावशेषों पर किसी नयी चीज़ का निर्माण होता। इस तरह का क्रमभंग नहीं हुआ और भारत में भी निरंतरता बनी रही। इसके अलावा, समय-समय पर पुनर्जागरण के दौर आते रहे। नए को समझने और उसे अनुकूल बनाकर कम-से-कम पुराने के उस अंश के साथ, जिसको रक्षा करने लायक समझा गया, उसका सामंजस्य करने के प्रयास साफ़ दिखाई पड़ते हैं। अक्सर पुराने का केवल बाहरी ढाँचा प्रतीक के रूप में बचा रहा और उसकी अंतर्वस्तु बदल गई। ऐसी लालसा, जो लोगों को उस लक्ष्य की ओर खींचती है जो पूरी तरह सिद्ध नहीं किया जा सका हो, और साथ ही प्राचीन और नवीन के बीच सामंजस्य स्थापित करने की इच्छा बराबर बनी रहती है– इसी लालसा ने उन्हें गति दी और उन्हें पुराने को बनाए रखने के साथ-साथ नए विचारों को आत्मसात करने की सामर्थ्य दी।

भारत की तलाश

पुस्तकों, प्राचीन स्मारकों और विगत सांस्कृतिक उपलब्धियों ने मुझमें एक हद तक भारत की समझ तो पैदा की लेकिन मुझे उससे संतोष नहीं हुआ, न ही मुझे वह उत्तर मिला जिसकी मैं तलाश कर रहा था। वर्तमान मेरे लिए और मुझ जैसे बहुत से और लोगों के लिए मध्ययुगीनता, भयंकर गरीबी एवं दुर्गति और मध्य वर्ग की कुछ-कुछ सतही आधुनिकता का विचित्र मिश्रण है। मैं अपने वर्ग और अपनी किस्म के लोगों का प्रशंसक नहीं था, फिर भी भारतीय संघर्ष में नेतृत्व के लिए मैं निश्चित रूप से मध्य वर्ग की ओर देखता था। यह मध्य वर्ग स्वयं को बंदी और सीमाओं में जकड़ा हुआ महसूस करता था

और खुद तरक्की और विकास करना चाहता था। अंग्रेजी शासन के ढाँचे के भीतर ऐसा न कर पाने के कारण उसके भीतर विद्रोह की चेतना पनपी। लेकिन यह चेतना उस ढाँचे के खिलाफ़ नहीं जाती थी जिसने हमें रौंद दिया था। ये उस ढाँचे को बनाए रखना चाहते थे और अंग्रेज़ों को हटाकर उसका संचालन करना चाहते थे। ये मध्य वर्ग के लोग इस हद तक इस ढाँचे की पैदाइश थे कि उसे चुनौती देना या उसे उखाड़ फेंकने का प्रयास करना इनके बस की बात नहीं थी।

नयी ताकतों ने सिर उठाया और वे हमें ग्रामीण जनता की ओर ले गईं। पहली बार एक नया और दूसरे ढंग का भारत उन युवा बुद्धिजीवियों के सामने आया जो इसके अस्तित्व को लगभग भूल ही गए थे या उसे बहुत कम अहमियत देते थे। यह दृश्य बेचैन कर देने वाला था इसलिए कि उसने हमारे कुछ मूल्यों और निष्कर्षों में संदेह उत्पन्न कर दिया था। तब हमने भारत के वास्तविक रूप की तलाश शुरू की और इससे हमारे भीतर इसकी समझ और द्वंद्व दोनों ही पैदा हुए। कुछ लोग इस ग्रामीण समुदाय से पहले से परिचित थे, इसलिए उन्हें कोई नया उत्तेजक अनुभव नहीं हुआ। पर मेरे लिए यह सही अर्थों में नयी तलाश के लिए यात्रा थी । गोया कि मुझे बराबर अपने लोगों की असफलताओं और कमजोरियों का दर्द भरा अहसास रहता था, पर भारत की ग्रामीण जनता में कुछ ऐसा था जिसे परिभाषित करना कठिन है पर उसने मुझे बराबर आकर्षित किया। उनमें कुछ ऐसी बात जो मध्य वर्ग में अनुपस्थित थी।

मैं आम जनता की अवधारणा को काल्पनिक नहीं बनाना चाहता। मेरे लिए भारत के लोगों का अपनी सारी विविधता के साथ वास्तविक अस्तित्व है। उनकी विशाल संख्या के बावजूद मैं उनके बारे में अनिश्चित समुदायों के नहीं, व्यक्तियों के रूप में सोचने की कोशिश करता हूँ। चूँकि मैंने उनसे बहुत अपेक्षाएँ नहीं रखी, शायद इसीलिए मुझे निराशा भी नहीं हुई। मैंने जितनी उम्मीद की थी उससे कहीं अधिक पाया। मुझे सूझा कि इसका कारण और इसके साथ ही उनमें जो एक प्रकार की दृढ़ता और अंत: शक्ति है उसका कारण भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा है जिसे उन्होंने कुछ अंशों में अब भी बचाए रखा है। पिछले दो सौ वर्षों में उन्होंने जो अत्याचार झेला है बहुत कुछ तो उसी के कारण समाप्त हो गया। फिर भी कुछ तो ऐसा बच रहा है जो सार्थक है और उसके साथ बहुत कुछ ऐसा है जो निरर्थक और अनिष्टकर है।

भारत माता

अक्सर जब मैं एक के बाद एक सभा में जाता तो श्रोताओं से मैं अपने इस देश की चर्चा करता– हिंदुस्तान की और साथ ही भारत की– जो जाति के संस्थापक 'भरत' के नाम पर आधारित इसका प्राचीन संस्कृत नाम है। मैंने शहरों में ऐसा कम किया क्योंकि वहाँ के श्रोता अपेक्षाकृत आधुनिक थे और वे अधिक दमदार भाषण की अपेक्षा करते थे। पर सीमित नज़रिए वाले किसानों को मैंने इस महान देश की बाबत बताया जिसकी मुक्ति के लिए हम संघर्ष कर रहे हैं, कि कैसे इसका हर हिस्सा दूसरे से भिन्न होते हुए भी भारत है। मैंने उन्हें उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक किसानों की सामान्य समस्याओं की जानकारी दी और उस स्वराज की भी जो कुछ विशेष लोगों के लिए नहीं, सब के लिए, भारत के हर हिस्से के लिए एक-सा होगा। मैंने उन्हें सुदूर उत्तर-पश्चिम में खैबर पास से कन्याकुमारी या केप कोमरिन तक अपनी यात्रा के बारे में बताया। मैंने बताया कि कैसे हर जगह मुझसे किसानों ने एक जैसे सवाल पूछे, क्योंकि उनकी समस्याएँ समान थीं– गरीबी, कर्ज़, निहित स्वार्थ, ज़मींदार, महाजन, भारी लगान और कर, पुलिस के अत्याचार और ये सब उस ढाँचे में लिपटे हुए थे जिसे हमारे ऊपर विदेशी हुकूमत ने आरोपित किया था। साथ ही यह भी कि राहत भी सबके लिए आनी चाहिए। मैंने इस बात की कोशिश की कि वे भारत को अखंड मानकर उसके बारे में सोचें। साथ ही थोड़ा-बहुत उस विराट विश्व के बारे में भी सोचें, जिसके हम एक हिस्से हैं।

यह काम बहुत आसान नहीं था पर उतना मुश्किल भी नहीं था जैसा मैंने सोचा था। हमारे प्राचीन महाकाव्यों, पुरागाथाओं और दंतकथाओं की उन्हें पूरी जानकारी थी। इस साहित्य ने अपने देश की अवधारणा से उन्हें परिचित करा दिया था। इन लोगों में से हमेशा कुछ ऐसे भी होते ही थे जिन्होंने भारत के चारों कोनों में स्थित धार्मिक स्थलों की यात्रा की थी।

कभी-कभी जैसे ही मैं किसी सभा में पहुँचता था, मेरे स्वागत में अनेक कंठों का स्वर गूँज उठता था– 'भारत माता की जय।' मैं उनसे अचानक प्रश्न कर देता कि इस पुकार से उनका क्या आशय है? मेरा प्रश्न उन्हें मनोरंजक लगता और चकित करता। उनकी ठीक-ठीक समझ में नहीं आता कि वे मुझे क्या जवाब दें और तब वे एक दूसरे की ओर, और फिर मेरी ओर ताकने लगते। मैं बार- बार सवाल करता जाता। आखिर एक हट्टा-कट्टा जाट, जिसका न जाने कितनी पीढ़ियों से मिट्टी से अटूट नाता है, जवाब में कहता कि यह भारत माता हमारी धरती है, भारत की प्यारी मिट्टी। मैं फिर सवाल करता– "कौन सी मिट्टी? उनके अपने गाँव के टुकड़े की या जिले और राज्य के तमाम टुकड़ों की या फिर पूरे भारत की मिट्टी?" प्रश्नोत्तर का यह सिलसिला तब तक चलता रहता जब तक वे प्रयत्न करते रहते और आखिर में कहते कि भारत वह सब कुछ तो है ही जो उन्होंने सोच रखा है, उसके अलावा भी बहुत कुछ है। भारत के पहाड़ और नदियाँ, जंगल और फैले हुए खेत जो हमारे लिए खाना मुहैया करते हैं, सब हमें प्रिय हैं। लेकिन जिस चीज़ का सबसे अधिक महत्त्व है वह है भारत की जनता। उनके और मेरे जैसे तमाम लोग। वे सब लोग जो इस विशाल धरती पर चारों ओर फैले हैं। भारत माता मूल रूप से यही लाखों लोग हैं और उसकी जय का अर्थ है इसी जनता जनार्दन की जय। मैंने उनसे कहा कि तुम भारत माता के हिस्से हो, एक तरह से तुम खुद ही भारत माता हो। जैसे-जैसे यह विचार धीरे-धीरे उनके दिमाग में बैठता जाता, उनकी आँखें चमकने लगतीं मानो उन्होंने कोई महान खोज कर ली हो।

भारत की विविधता अद्भुत है, प्रकट है, वह सतह पर दिखाई पड़ती है और कोई भी उसे देख सकता है। इसका ताल्लुक शारीरिक रूप से भी है और मानसिक आदतों और विशेषताओं से भी। बाहर से देखने पर उत्तर-पश्चिमी इलाके के पठान और सुदूर दक्षिण के वासी

तमिल में बहुत कम समानता है। उनकी नस्लें भिन्न हैं, हालाँकि उनके भीतर कुछ समान सूत्र हो सकते हैं। वे चेहरे और शरीर- गठन में, खाने और पहनावे में और भाषा में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश में मध्य एशिया की गमक तो है ही, वहाँ के बहुत से रीति-रिवाज, जैसे कश्मीर के भी, हिमालय के उस पार के देशों की याद दिलाते हैं। पठानों के लोक प्रचलित नृत्य रूसी कोज़क नृत्य शैली से मिलते हैं। इन तमाम भिन्नताओं के बावजूद पठान पर भारत की छाप वैसी ही स्पष्ट है जैसी तमिल पर। इसमें कोई अचरज नहीं, क्योंकि सीमा के ये प्रदेश, और साथ ही अफ़गानिस्तान भी, भारत के साथ हज़ारों वर्ष से जुड़े रहे हैं। ये पुराने तुर्क और दूसरी जातियाँ जो अफ़गानिस्तान और मध्य एशिया में बसी थीं, इस्लाम के आने से पहले, बौद्ध थीं और उससे भी पहले वैदिक काल में हिंदू थीं। सीमांत क्षेत्र प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रमुख केंद्रों में से था । अब भी स्मारकों और मठों के ढेरों ध्वस्त अवशेष उसमें बिखरे हैं– विशेष रूप से तक्षशिला के महान विश्वविद्यालय के, जो दो हज़ार वर्ष पहले अपनी प्रसिद्धि की चरम सीमा पर था। सारे भारत के साथ ही एशिया के विभिन्न भागों से विद्यार्थी यहाँ खिंचे आते थे। धर्म-परिवर्तन से अंतर ज़रूर आया, पर उन क्षेत्रों के लोगों ने जो मानसिकता विकसित कर ली थी वह पूरी तरह नहीं बदल सकी।

पठान और तमिल दो चरम उदाहरण हैं, बाकी की स्थिति कहीं इन दोनों के बीच में है। सबकी अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं, पर सब पर इससे भी गहरी छाप भारतीयता की है। यह जानकारी बेहद हैरत में डालने वाली है कि बंगाली, मराठी, गुजराती, तमिल, आंध्र, उड़िया, असमी, कन्नड़, मलयाली, सिंधी, पंजाबी, पठान, कश्मीरी, राजपूत और हिंदुस्तानी भाषा-भाषी जनता से बसा हुआ विशाल मध्य भाग, कैसे सैकड़ों वर्षों से अपनी-अपनी अलग पहचान बनाए रहा। इसके बावजूद इन सबके गुण-दोष कमोबेश एक से हैं– इसकी जानकारी पुरानी परंपरा और अभिलेखों से मिलती है। साथ ही इस पूरे दौरान वे ऐसे भारतीय बने रहे हैं जिनकी राष्ट्रीय विरासत एक ही थी और उनकी नैतिक और मानसिक विशेषताएँ भी समान थीं। प्राचीन चीन की तरह प्राचीन भारत अपने आप में एक दुनिया थी, एक संस्कृति और सभ्यता थी जिसने तमाम चीज़ों को आकार दिया था। विदेशी प्रभाव आए और अक्सर उस संस्कृति को प्रभावित करके उसी में जज़्ब हो गए। जब भी विघटनकारी तत्व उभरे तत्काल उन्होंने सामंजस्य खोजने के प्रयास को बढ़ावा दिया। सभ्यता के आरंभ से ही भारतीय मानस में एकता के स्वप्न ने अपनी जगह बनाए रखी। इस एकता की कल्पना कभी किसी बाहर से आरोपित वस्तु या बाहरी तत्वों के या विश्वास के मानकीकरण के रूप में नहीं की गई। इसके अंतर्गत विश्वासों और रीति-रिवाजों के प्रति अपार सहिष्णुता का पालन किया गया और साथ ही हर तरह की विविधता को मान्यता ही नहीं प्रोत्साहन भी दिया गया।

किसी एक देशीय समूह में, चाहे वे कितने घनिष्ठ रूप में एक-दूसरे से जुड़े हों, छोटी-बड़ी भिन्नताएँ हमेशा देखी जा सकती हैं। उस समूह की मूल एकता तब प्रकट होती है जब उसकी तुलना किसी अन्य देशीय समूह से की जाती है। यह बात अलग है कि अक्सर दो निकटवर्ती समूहों की भिन्नता, सीमांत इलाकों में या तो धुँधली पड़ जाती हैं या आपस में घुल-मिल जाती हैं। प्राचीन और मध्य युग में, आधुनिक राष्ट्र के विचार ने जन्म नहीं लिया था और सामंती, धार्मिक या जातीय संबंधों का महत्त्व अधिक था। फिर भी, मेरा विचार है कि ज्ञात इतिहास में किसी भी समय एक भारतवासी, भारत के किसी भी हिस्से में अपने ही घर की-सी अपने की अनुभूति करता था, जबकि किसी भी दूसरे देश में पहुँचकर वह अजनबी और परदेशी महसूस करता था। उन देशों में जाकर जिन्होंने कुछ दूर तक उसकी संस्कृति या धर्म को अपना लिया था, उसे अजनबीपन का बोध निश्चय ही कम होता था। वे लोग जो किसी गैर-भारतीय धर्म को मानने वाले थे या भारत में आकर यहीं बस गए, कुछ ही पीढ़ियों के गुज़रने के दौरान स्पष्ट रूप से भारतीय हो गए जैसे यहूदी, पारसी और मुसलमान। जिन भारतीयों ने इन धर्मों को स्वीकार कर लिया वे भी धर्म-परिवर्तन के बावजूद भारतीय बने रहे।

आज, जब राष्ट्रीयतावाद की अवधारणा कहीं अधिक विकसित हो गई है, विदेशों में भारतीय अनिवार्य रूप से एक राष्ट्रीय समुदाय बनाकर विभिन्न कारणों से एकजुट होकर रहते हैं, भले ही उनमें भीतरी मतभेद हों। एक हिंदुस्तानी ईसाई, कहीं भी जाए, उसे हिंदुस्तानी ही माना जाता है। इस प्रकार किसी हिंदुस्तानी मुसलमान को तुर्की, अरब, ईरान या किसी भी अन्य देश में, जहाँ इस्लाम धर्म का प्रभुत्व हो, हिंदुस्तानी ही समझा जाता है।

मेरे खयाल से, हम सब के मन में अपनी मातृभूमि की अलग-अलग तसवीरें हैं और कोई दो आदमी बिलकुल एक जैसा नहीं सोच सकते। जब मैं भारत के बारे में सोचता हूँ, तो मेरे मन में बहुत-सी बातें आती हैं। मैं सोचता हूँ– दूर-दूर तक फैले मैदानों और उन पर बसे अनगिनत छोटे-छोटे गाँवों के बारे में। उन कस्बों और शहरों के बारे में जिनकी मैंने यात्रा की।

वर्षा ऋतु की उस जादुई बरसात के बारे में जो झुलसी हुई धरती में जीवन संचार करके उसे सहसा सौंदर्य और हरियाली के झिलमिलाते प्रसार में बदल देती है। विशाल नदियों और उनके बहते जल के बारे में। ठंड की चादर से लिपटे खैबर पास के बारे में। भारत के दक्षिणी सिरे के बारे में। लोगों के बारे में– व्यक्ति और समूह दोनों रूपों में और सबसे ज्यादा बर्फ़ की टोपी पहने हिमालय के या वसंत ऋतु में कश्मीर की किसी पहाड़ी घाटी के बारे में जो नवजात फूलों से लदी होती है और जिसके बीच से कलकल-खलखल करता झरना बहता है। हम अपनी पसंद की तसवीर बनाते हैं और सहेजकर रखते हैं।

जन संस्कृति

मैंने वर्तमान समय में भारतीय जनता के गतिशील जीवन-नाटक को देखा। ऐसे अवसर पर मैं अक्सर उन सूत्रों को खोज लेता था जिनसे उनका जीवन अतीत में बँधा है, जबकि उनकी आँखें भविष्य पर टिकी रहती थीं। हर जगह मुझे एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मिली जिसका जनता के जीवन पर बहुत गहरा असर था। इस पृष्ठभूमि में लोक प्रचलित दर्शन, परंपरा, इतिहास, मिथक और पुराकथाओं का मेल था और इनमें से किसी को दूसरे से अलग करके देख पाना संभव

नहीं था। पूरी तरह अशिक्षित और निरक्षर लोग भी इस पृष्ठभूमि में हिस्सेदार थे। लोक-प्रचलित अनुवादों और टीकाओं के माध्यम से भारत के प्राचीन महाकाव्य– *रामायण* और *महाभारत* और अन्य ग्रंथ भी जनता के बीच दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। हर घटना, कथा और उनका नैतिक अर्थ, लोकमानस पर अंकित था और उसने उन्हें समृद्ध और संतुष्ट बनाया था। अनपढ़ ग्रामीणों को सैकड़ों पद याद थे और अपनी बातचीत के दौरान वे बराबर या तो उन्हें उद्धृत करते थे या फिर किसी प्राचीन रचना में सुरक्षित किसी ऐसी कहानी का उल्लेख करते थे जिससे कोई नैतिक उपदेश निकलता हो। रोज़मर्रा की जिंदगी के मसलों के बारे में सीधी-सादी बातचीत को ये देहाती लोग जब इस तरह का साहित्यिक मोड़ देते थे तो मुझे अक्सर बहुत आश्चर्य होता था। यदि मेरे मन में लिखित इतिहास और लगभग सुनिश्चित तथ्यों से निर्मित तसवीरों का भंडार था तो मैंने महसूस किया कि अनपढ़ किसान के मन में भी उसका अपना तसवीरों का भंडार है। यह बात अलग है कि उसका स्त्रोत पुराकथाएँ एवं परंपरा और महाकाव्य के नायक-नायिकाएँ ही अधिक थीं और इतिहास बहुत कम। तिस पर भी वह बहुत स्पष्ट होता था। मैं उनके चेहरे, उनके आकार और उनकी चाल-ढाल को ध्यान से देखता। उनके बीच बहुत से संवेदनशील चेहरे, बलिष्ठ देह और सीधे साफ़ अवयवों वाले पुरुष दिखाई देते। महिलाओं में लावण्य, नम्रता, गरिमा और संतुलन के साथ-साथ एक ऐसा चेहरा जो अवसाद से भरा होता था। कभी-कभी किसी देहाती रास्ते या गाँव के बीच से गुज़रते हुए मेरी नज़र किसी मनोहर पुरुष या सुंदर स्त्री पर पड़ती थी तो मैं विस्मय-विमुग्ध हो जाता था। वे मुझे पुराने भित्ति चित्रों की याद दिला देते थे। मुझे इस बात से हैरत होती कि उन तमाम भयानक कष्टों के बावजूद, जिनसे भारत युगों तक गुज़रता रहा, आखिर यह सौंदर्य कैसे टिका और बना रहा। इन लोगों को साथ लेकर हम क्या नहीं कर सकते बशर्ते इनके हालात बेहतर हों और इनके पास कुछ करने के ज़्यादा अवसर हों।

चारों ओर गरीबी और उससे पैदा होने वाली अनगिनत विपत्तियाँ फैली थीं और इसकी छाप हर माथे पर थी। जिंदगी को कुचलकर विकृत और भयंकर रूप दे दिया गया था। इस विकृति से तरह-तरह के भ्रष्टाचार पैदा हुए और लगातार अभाव और असुरक्षा की स्थिति बनी रहने लगी। यह सब देखने में सुखद नहीं था, पर भारत की असलियत यही थी। स्थितियों को समर्पित भाव से स्वीकार करने की प्रवृत्ति प्रबल थी। पर साथ ही एक प्रकार की नम्रता और भलमनसाहत थी जो हज़ारों वर्ष की सांस्कृतिक विरासत की देन थी, जिसे बड़े से बड़ा दुर्भाग्य भी नहीं मिटा पाया था।

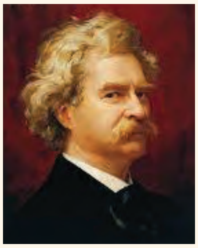

भारत मानव जाति का पलना है, मानव-भाषा की जन्मस्थली है, इतिहास की जननी है, पौराणिक कथाओं की दादी है, और प्रथाओं की परदादी है। मानव इतिहास की हमारी सबसे कीमती और सबसे ज्ञान-गर्भित सामग्री केवल भारत में ही संचित है।

—मार्क ट्वेन

इस अंक का मुखपृष्ठ

1980 में अपनी स्थापना के बाद अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति का पहला प्रकाशन था–

एक स्मारिका। अवसर था 1 अक्टूबर 1983 को मैरीलैंड हाई स्कूल में आयोजित कवि सम्मेलन जिसमें स्थानीय कवियों के अतिरिक्त नीरज, प्रभा ठाकुर और हिन्दी ब्लिट्ज के तत्कालीन संपादक नंदकिशोर नौटियाल भाग लेने वाले थे। इस स्मारिका में समिति के उद्देश्य, योजनाएँ, सदस्यता प्रपत्र के साथ कुछ स्थानीय संस्थानों के विज्ञापन भी थे।

आज के सम्पूर्ण रंगीन 'विश्वा' के सामने यह प्रयास बहुत आदिम लग सकता है लेकिन यदि हम देखना चाहें तो इसमें एक लगन, एक उत्साह एक निश्छल साहचर्य की भावना स्पष्ट झलकती है। इसी भाव से बड़े बड़े लक्ष्य हासिल होते हैं, दुनिया आगे बढ़ती है।

आग और पहिये के आदिम स्वरूप भी ऐसे ही रोमांचक रहे होंगे।

इसे अपनी हस्तलिपि में समिति के द्वितीय अध्यक्ष डॉ. गोपाल शर्मा ने लिखा था।

डॉ. रणजीत मानववादी कविता पुरस्कार

हिन्दी के अति वरिष्ठ कवि डॉ. रणजीत ने प्रतिवर्ष हिन्दी के तीस वर्ष तक की आयु के एक मानवतावादी कवि/कवयित्री को तीस हज़ार रु. का पुरस्कार देने की घोषणा की है।

पुरस्कार के लिए कविजन अपनी कोई प्रकाशित कृति अथवा बीस टंकित कविताएँ प्रति वर्ष 31 जुलाई तक इस पते पर भेज सकते हैं–

Dr Ranjeet
Flat # 4092, Shobha Dahliya
Green Glen Layout, Bellandur,
Bengaluru, Karnataka 560103
Mobile: 9108792360, 8792588831, 9463432405

'विश्वा' के पाठक डॉ. रणजीत की कविताओं और विचारों से भली-भाँति परिचित हैं।

नोबल कथाएँ (1)

यथार्थ, लोकपरंपरा और अलौकिकता का समृद्ध कैनवास - सेल्मा लागर्लूफ़ का रचना संसार

डॉ. चारु सिंह

(साहित्य जीवन को दिशा देता है। विश्व के श्रेष्ठ मूल्य साहित्य से ही निसृत हैं। इन्हीं मूल्यों को धर्म और राजनीति का मार्गदर्शक होना चाहिए इसीलिए हमें समस्त विश्व के श्रेष्ठ साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। चूँकि हमारे पाठक विशेषरूप से वैश्विक सोच वाले हैं अतः इस स्तम्भ में हम साहित्य का नोबल प्राप्त महिलाओं के साहित्य से उन्हें परिचित करवाना चाहते हैं। महिला लेखिकाओं के साहित्य से इसलिए कि वे वत्सल होती हैं। करुणा से ओतप्रोत। और करुणा के बिना यह सृष्टि कब तक बचेगी? -सं.)

1909 वह साल था जब साहित्य का नोबेल पुरस्कार पहली बार एक स्त्री को मिला। नोबेल समिति ने स्वीडिश साहित्यकार 'सेल्मा ओटीलिया लोविसा लागर्लूफ़' को उनके लेखन में उपस्थित 'उच्च आदर्शवाद, सजीव कल्पना और आध्यात्मिक दृष्टिकोण' के लिए उन्हें यह सम्मान दिया था। अपनी तमाम प्रतिभा के बावजूद, एक स्त्री के लिए साहित्य के इस सर्वोच्च सम्मान को पाने की राह आसान नहीं थी। वह लेखिका जिसकी तुलना उसके समकालीन युग में ही होमर और शेक्सपियर से की जाने लगी थी, उसे जब इस पुरस्कार के लिए चुना गया तो नोबेल समिति में ही इस बात पर अंदरूनी विवाद शुरू हो गया। आख़िर एक स्त्री को नोबेल जैसा सम्मान इतनी आसानी से कैसे दिया जा सकता था! दुनियाँ बदलती रही और स्त्री के समान अधिकारों के लिए संघर्ष होते रहे लेकिन दुनिया को बदलने और अधिक उदार बनाने में इस लेखिका का योगदान कुछ कम नहीं है। यह लेखिका अपने दौर में स्वीडन में चल रहे स्त्री मताधिकार आंदोलन की प्रबल समर्थक थी जो उस वक़्त कई महत्वपूर्ण स्त्रियों को एक ग़लत माँग लगती थी। ऐसी स्त्रियों का विश्वास था कि स्त्री की जगह घर के भीतर है और मत देने जैसे राजनीतिक अधिकार उसे देना समाज को पतन की ओर ले जाना है।

चित्र 1 : जून 17, 1911 में जॉर्ज पंचम के राजतिलक के समय लन्दन में भारतीय सफ़्रेजेट्स स्त्रियों की भागीदारी का एक चित्र (इन्हीं के घोड़े से एमिली डेविडसन की हत्या हुई थी)

यह लेखिका इस 'सफ़्रेजेट आंदोलन' की आधिकारिक प्रवक्ता भी थी और इतिहास के उस दौर में यही ख़ासी बहादुरी का काम थी। यह वह दौर था जब इस तरह की माँग करने वाली एमिली डेविडसन को इंग्लैंड के जॉर्ज पंचम के घोड़े से रौंद कर मार दिया गया था। फ्रांस की क्रांति में तो स्वतंत्रता का झंडा उठाए पुरुषों ने इस तरह की माँग करने वाली स्त्रियों को ज़िंदा जला दिया था। स्त्री आंदोलनकारियों के साथ बर्बरता के दस्तावेज अब भी पितृसत्ता के अहं के साक्षी बने हुए हैं। ऐसे में इस आंदोलन की सदस्य सेल्मा न सिर्फ़ यह पुरस्कार पाने वाली पहली महिला बनी बल्कि 1914 में नोबेल समिति की पहली महिला सदस्य भी। यह अकादमिक दुनिया में औरतों की प्रतिभा और योगदान को सही सम्मान मिलने की दिशा में एक सकारात्मक मोड़ था।

चित्र 2 : स्वीडिश नोट पर सेल्मा लागर्लूफ़

सेल्मा लागर्लूफ़ नाम की यह युगांतकारी स्वीडिश लेखिका जिसने स्वीडिश साहित्यिक क्षेत्र के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक पटल पर भी न सिर्फ़ पुरुष वर्चस्व को तोड़ा बल्कि अपने समकालीन स्वीडिश साहित्य में प्रचलित यथार्थवाद के वर्चस्व को भी। अपनी कोमल आदर्शवादी रचनाओं और मिथकीय-मायावी लोककथाओं से सेल्मा ने यथार्थवादी साहित्य को अपदस्थ कर दिया। स्त्री अधिकारों की पक्षधर इस लेखिका ने अपनी रचनाओं के लिए जिस भाषा, प्रतीक विधान और लोकसंस्कृति को चुना वह हाशिए की आवाजें थीं। सेल्मा ने स्वीडिश साहित्य को हमेशा के लिए बदल कर रख दिया और देखते ही देखते स्कैंडिनेवियन किस्सागोई को वैश्विक पाठक समुदाय की साहित्यिक संवेदना का हिस्सा बना दिया। उनका

लेखन यथार्थवाद की प्रचलित पद्धति को हल्के हाथों से पकड़े हुए ही इसमें लोक साहित्य और मिथकीय चरित्रों की उपस्थिति की गुंजाइश बनाता गया और एक नए तरह के आदर्श और आध्यात्म मिश्रित यथार्थवाद को लेकर सामने लेकर आया। उदाहरण के लिए, निल्स होल्गरसन का ही किस्सा लें। एक छोटी जोत वाले मेहनतकश किसान परिवार के बच्चे 'निल्स' की कष्टप्रद गरीबी, उसकी बदमाशियों और रोजमर्रा के जीवन के किस्से के रास्ते लिखी गई भूगोल की इस प्राइमर की कहानी सेल्मा की इस शैली का प्रतिनिधि नमूना है। निल्स के शरारत भरे जीवन में उत्तरी ध्रुव के करीब स्थित इस देश में मार्च की एक गुनगुनी दोपहर जब निल्स सम्भावित बदमाशियों की संभावनाएं तलाशते और सरमन पढ़ते अपनी मेज़ पर ही सो गया है। उस सूक्ष्मता से चित्रित उत्तरी जलवायु की भौगोलिक परिस्थितियों के एक ख़ूबसूरत सुगंधित दोपहर के उस दृश्य में जब पाठक का ध्यान इस किताब के भूगोल की पाठ्यपुस्तक होने की ओर बस जाने ही वाला है, एक मिथकीय एल्फ की सहसा उपस्थिति जो जादुई ट्विस्ट लाती है, वह भूगोल की इस किताब को उपन्यास के रूप में ढालता हुआ इसे लोककथा और आधुनिक यथार्थवादी साहित्य की एक अमर कृति बना देता है। उनकी इस शैली का असर दुनिया भर के साहित्य पर पड़ा। इसी का विस्तार बाद के दौर में 'जादुई यथार्थवाद' के रूप में साहित्य के पाठकों को देखने को मिलता है।

चित्र 3 : सेल्मा लागर्लूफ़

चित्र 4 : सेल्मा लागर्लूफ़ का नोबेल डिप्लोमा

सेल्मा लागर्लूफ़ का जन्म स्वीडन में वार्मलैण्ड काउंटी के ऑस्ट्रा एम्टरविक में 20 नवंबर, 1858 में हुआ था। उनके पिता 'एरिक गुस्ताफ लागर्लूफ़' एक सैन्य अधिकारी थे। उनकी माँ 'लुईस लागर्लूफ़' स्वीडन के ग्रामीण अभिजात्य परिवार में जन्मीं थीं और एक सुरुचिपूर्ण स्त्री थीं। लागर्लूफ़ का बचपन मॉरबाका एस्टेट में बीता जो बाद में उनके साहित्य में एक महत्वपूर्ण प्रतीक बन कर उभरा। उनकी प्रारंभिक शिक्षा स्टॉकहोम के एक निजी विद्यालय में हुई। 1882 में उन्होंने 'रॉयल एडवांस्ड फीमेल टीचर्स सेमिनरी' में प्रवेश लिया और 1885 में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। इस दौरान लागर्लूफ़ ने कविताएँ और गद्य लिखना प्रारंभ किया और विभिन्न कथात्मक शैलियों में लेखन के प्रयोग करने लगीं। यह वही समय था जब उन्होंने अपने साहित्यिक करियर की नींव रखी थी जो आगे चलकर उन्हें स्वीडन की सबसे प्रसिद्ध लेखकों में से एक बना सका। 1885 में वे लैंडस्क्रोना के एक कन्या माध्यमिक विद्यालय की शिक्षिका के रूप में पढ़ाने लगीं। कविता वे बचपन से ही लिख रही थीं लेकिन 1890 से पहले उनका लिखा कुछ भी प्रकाशित नहीं हुआ। एक स्वीडिश साप्ताहिक पत्र ने 1890 में हुई एक साहित्यिक प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार देते हुए उनकी किताब के कुछ अंश प्रकाशित किए। बाद में यह किताब 'गोस्ता बर्लिंग्स सागा' उनकी पहली और सबसे मशहूर किताब बनी। इसका प्रकाशन 1891 में हुआ लेकिन इस पर लोगों का ध्यान तब तक नहीं गया जब तक इसका डैनिश भाषा में अनुवाद नहीं हुआ। यह अनुवाद होते ही यह किताब समीक्षकों के बीच चर्चा का विषय बन गई और बेहद सराही गई। इसके बाद तो यह किताब स्वीडन और उसके बाहर भी व्यापक रूप से प्रसारित और चर्चित हुई और साहित्य की एक धरोहर के रूप में उभरी। 1895 में स्वीडिश राजपरिवार और बाद में स्वीडिश अकादमी से मिली आर्थिक सहायताओं ने उन्हें शिक्षिका की नौकरी पूरी तरह छोड़ने का मौक़ा दिया। उन्होंने इस सहायता से इटली की यात्रा की और 1897 में 'द मिरेकल्स ऑफ एंटीक्राइस्ट' नाम का एक उपन्यास लिखा जिसकी कहानी इटली के सिसली शहर में अवस्थित है। बहुत सी छोटी-बड़ी रचनाओं के बाद उन्होंने 'येरुशलम' नाम का उपन्यास 1901 में प्रकाशित किया। यह उपन्यास उन स्वीडिश किसानों की कहानी पर केंद्रित है जो पवित्र स्थान की आकांक्षा में फ़िलिस्तीन जा बसे थे। इन धार्मिक प्रवासियों को ठीक से जानने के लिए वे ख़ुद 1900 में येरुशलम गईं। यह उनकी पहली किताब थी जिसे प्रकाशित होते ही सफलता मिल पायी। इसके अलावा उपरोक्त किताब जिसे प्राथमिक विद्यालयों के लिए भूगोल के एक प्राइमर के रूप में लिखा गया था वह दुनिया की तमाम भाषाओं में लिखे गए बाल साहित्य की सबसे श्रेष्ठ रचना के रूप में उभरी। 1906 में प्रकाशित यह किताब 'द वंडरफुल एडवेंचर्स ऑफ़ निल्स' भूगोल की सामान्य शिक्षाओं, आदर्शवाद और स्वीडन की प्राचीन लोककथाओं और मिथकों का एक अनूठा संगम है।

सेल्मा की यों तो सभी रचनाएँ अपने आप में अद्वितीय हैं लेकिन उनकी पहली रचना 'गोस्ता बर्लिंग्स सागा' अपनी लोकप्रियता और प्रभाव में इन सबसे अधिक थी। बाद के दशक में उनके द्वारा तीन खण्डों में प्रकाशित ऐतिहासिक रचनाएँ 'द रिंग ऑफ़ द लवनस्कोल्ड्स' (1925), 'शेर्लोट लवनस्कोल्ड्स' (1927) और 'अन्ना स्वार्ड' (1928) भी उनकी चर्चित रचनाओं में से हैं। उन्होंने 'मॉरबाका' नाम से 1922 से 1932 के बीच कई खण्डों में संस्मरण भी लिखे जो काफ़ी लोकप्रिय हुए।

सेल्मा लागर्लूफ़ की साहित्यिक शैली को आकार देने में वार्मलैंड प्रदेश में प्रचलित लोक कथाओं और किस्सागोई की पुरातन और समृद्ध परंपरा भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। उनके साहित्य में उन लोककथाओं

चित्र 5 : गोस्ता बर्लिंग्स सागा

ने एक नवीन और आधुनिकीकृत रूप पाया जो उन्होंने कभी अपनी दादी से सुनी थीं। दादी से मिली स्कैंडिनेवियन मिथकों, अलौकिक घटनाओं और ऐतिहासिक गाथाओं की यह समृद्ध दुनिया उनके कल्पना संसार का एक अपरिहार्य हिस्सा बनी रहीं। उस वक्त जब स्वीडिश साहित्य में यथार्थ ही रचनाकार का नियम था और उनके समकालीन स्वीडिश लेखक इस फैशनेबल यथार्थवाद की ओर झुके हुए थे, लागर्लूफ़ ने बड़ी मजबूती से आदर्शवादी रचनाओं को लिखा और प्रकाशित किया। लोककथाओं की गीतात्मक लय से सशक्त अपनी भाषा में जादू और नैतिक दृष्टांतों को घुलाते-मिलाते हुए जो शैली वे विकसित कर सकीं, वही उनके साहित्य का मूलभूत तत्व बन गई।

1891 में प्रकाशित गोस्ता बर्लिंग्स सागा के साथ लागर्लूफ़ का स्वीडिश साहित्यिक जगत में एक गंभीर लेखक के रूप में उदय हुआ। 19वीं सदी पूर्वार्ध में स्वीडन के वार्मलैण्ड में अवस्थित यह उपन्यास चमत्कारिक शक्तियों से युक्त लेकिन धर्मभ्रष्ट हो चुके एक पुजारी गोस्ता बर्लिंग की कहानी कहता है। कहानी का केंद्र गोस्ता बर्लिंग नामक यह पूर्व पादरी है जो अपनी शराब की लत और उच्छृंखल व्यवहार के कारण चर्च से निष्कासित कर दिया गया है। कहानी की शुरुआत में गोस्ता हताशा के कगार पर है और आत्महत्या करने वाला है लेकिन उसे एकेबी की धनी और प्रभावशाली मालकिन (मेज़र की पत्नी) बचा लेती है। वह एकेबी एस्टेट की विशाल जागीरदारी की मालकिन है और कहानी में ममतामयी चरित्र के रूप में उभरी है। एकेबी, जहाँ बारह अनोखे लेकिन अब पतित व्यक्ति रहते हैं, जिन्हें 'कैवेलियर्स ऑफ एकेबी' कहा जाता है। गोस्ता बर्लिंग इन सनकी असामाजिक व्यक्तियों के इस 'कैवेलियर्स ऑफ़ एकेबी' समूह का सदस्य बन जाता है। इसके सदस्य समाज द्वारा त्यागे गए वे व्यक्ति हैं, जो किसी भी ज़िम्मेदारी से मुक्त केवल भोग-विलास, मौज-मस्ती और रोमांचक क्रियाकलापों में लिप्त रहते हैं। जल्द ही गोस्ता बर्लिंग इस समूह का नेता बन जाता है और एक स्वच्छंद जीवन जीने लगता है। नए-नए प्रेम संबंधों और साहसिक कारनामों से भरा हुआ जीवन। प्रेम, संघर्ष और हृदय-परिवर्तन की विषयवस्तु पर केन्द्रित यह उपन्यास हालाँकि युवावस्था के विद्रोह और आनंद के क्षणों को लेकर सहानुभूतिपूर्ण है, लेकिन इसका स्पष्ट झुकाव पापमोचन या रिडेम्पशन के ईसाई सिद्धान्त और बलिदान और प्रेम के ईसाई आदर्शों की ओर है। नायक बर्लिंग को अपने जीवन के अनेक प्रेम प्रसंगों में अलग-अलग तरह के आध्यात्मिक संघर्षों और रहस्यमयी घटनाओं का सामना करना पड़ता है जिनसे वह धार्मिक आदर्शों की ओर वापिस लौटता है। यह एक क्रमबद्ध उपन्यास है जिसे अंग्रेजी में एपिसोडिक नॉवेल कहते हैं। उपन्यास का प्रत्येक अध्याय अलग-अलग चरित्रों और उनके नैतिक संघर्षों को चित्रित करता हुआ आगे बढ़ता है। भावुक प्रेम कहानियों के साथ भूत-पिशाचों की मिथकीय ताकतों और हस्तक्षेप के बीच दंतकथाओं के परिवेश में फँसे हुए यथार्थ और अलौकिकता से एक साथ जूझते पात्र ऐसे संसार को जीवंत करते हैं, जहाँ यथार्थवाद और जादुई तत्व आपस में गहराई से गुंथे हुए हैं। बर्लिंग का चरित्र व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक जिम्मेदारी के बीच की कश्मकश में फँसा हुआ है। वह अपने भोग-विलास और नैतिक कर्तव्यों के द्वंद्व में सैद्धांतिक संघर्ष से जूझता हुआ पाठकों के सम्मुख कई महत्त्वपूर्ण दार्शनिक प्रश्न छोड़ जाता है जिन्हें बाद में सार्त्र और कामू जैसे लेखकों ने आगे बढ़ाया और विकसित किया। एकेबी की प्रभावशाली मालकिन के रास्ते सेल्मा ने पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की जटिल सामाजिक स्थिति को भी उभारा है।

निल्स होल्गरसन की अद्‌भुत यात्रा

'द वंडरफुल एडवेंचर्स ऑफ़ निल्स' मूल रूप से स्वीडिश स्कूलों के लिए एक भूगोल पाठ्यपुस्तक के रूप में लिखा गया था। यह उपन्यास लोककथाओं और निल्स की रोमांच भरी यात्रा के साथ आधुनिक शिक्षा पद्धति और नैतिक मूल्यों को जोड़कर एक अद्वितीय साहित्यिक कृति का रूप हासिल कर लेता है। किसान परिवार में पैदा हुआ निल्स होल्गरसन एक स्वार्थी, कामचोर, क्रूर और शरारती लड़का है। जानवरों को परेशान करने में उसे बहुत आनंद आता है। एक दिन वह एक नन्हें से एल्फ को पकड़ लेता है जो उसकी माँ की अलमारी में छिप कर बैठा है। कहते हैं एल्फ आपके घर खुशियाँ लेकर आते हैं। यह एल्फ भी इस ग़रीब परिवार में ख़ुशियाँ लेकर आया था। उसी की बरक्कत थी जो बैकयार्ड भर की जगह में बने उनके छोटे से घर में अब तीन गाय, कुछ मुर्गियाँ और बत्तख़, हंस और सुअर सभी कुछ समा गया था और सबका पेट भर रहा था। उस एल्फ के बार-बार गिड़गिड़ाने पर भी निल्स उसे नहीं छोड़ता। जो एल्फ इस ग़रीब परिवार में खुशियों का संदेश लेकर आया था और छिपकर इनकी सहायता किया करता था, निल्स की इस क्रूरता से बड़ा आहत हुआ और इसके दंड के रूप में उसने नीला्स को भी जादू से बेहद छोटा लगभग आधी हथेली का बना दिया। ठीक अपने जैसा। लेकिन एल्फ दयालु भी है वह निल्स को जानवरों की भाषा समझने जैसी कई अपनी ताकतें भी दी। इसके साथ शुरू होती है निल्स की वह जादुई यात्रा जो किस्से-कहानी में ही स्कूली छात्रों को भूगोल के सभी पहलुओं को समझाती चली जाती है।

अपने पालतू हंस मार्टिन (गूज़ी गैंडर) की पीठ पर सवार निल्स इस यात्रा के दौरान स्वीडन के विभिन्न प्रांतों की यात्रा करता है, जहाँ वह स्थानीय लोककथाओं और किंवदंतियों के पात्रों को देखता है, ऐतिहासिक घटनाओं के बारे में जानता है और प्रकृति के चमत्कारों, पशु-पक्षियों के जीवन और उत्तर की भौगोलिक विशेषताओं को समझता है। यह यात्रा केवल स्वीडन की लोककथाओं, भूगोल और इतिहास की यात्रा ही नहीं है बल्कि निल्स के आत्म-परिवर्तन की भी यात्रा है। यात्रा के दौरान निल्स कई महत्वपूर्ण नैतिक सबक सीखता है जिनमें दयालुता, साहस और जीव-जंतुओं के प्रति सम्मान सबसे ख़ास हैं। अंततः वह खुद को योग्य और बदला हुआ साबित कर

पाता है। इसके पुरस्कार में उसे फिर से अपने सामान्य रूप में बहाल कर दिया जाता है। निल्स होल्गरसन की अद्भुत यात्रा का 60 से अधिक भाषाओं में अनुवाद किया गया है। देखते-देखते यह उपन्यास स्वीडिश राष्ट्रीय पहचान का प्रतीक बन गया और इसे स्कूलों में अब भी पढ़ाया जाता है। 1980 में इसे एक लोकप्रिय जापानी एनिमे के रूप में भी रूपांतरित किया गया। सेल्मा की यह कृति केवल बच्चों की कहानी नहीं बल्कि एक गहन दार्शनिक और नैतिक यात्रा है जो आत्म-परिवर्तन और जीवन के गहरे अर्थ को समझने की यात्रा भी है।

चित्र 6 : स्वीडिश डाक टिकट पर 'द वंडरफुल एडवेंचर्स ऑफ़ निल्स' का एक दृश्य

येरुशलम

1901 और 1902 में दो खंडों में प्रकाशित उपन्यास येरुशलम सेल्मा लागर्लूफ़ के सबसे महत्त्वाकांक्षी उपन्यासों में से एक है। समीक्षकों द्वारा सराहे गए इस उपन्यास की कथावस्तु ऐतिहासिक घटनाओं से प्रेरित है। उपन्यास उस धार्मिक उत्साह और जुनून की पड़ताल करता है जिससे प्रेरित होकर उन्नीसवीं सदी उत्तरार्ध में स्वीडिश किसानों का एक समूह अपना देश छोड़कर और 'पवित्र भूमि' येरुशलम की यात्रा पर निकला। 1900 में सेल्मा ने फिलिस्तीन की यात्रा की और स्वीडिश आप्रवासियों से मुलाकात करके इस उपन्यास के लिए गहन शोध किया। यह स्वीडिश किसान 'द अमेरिकन कॉलोनी' नामक एक ईसाई संप्रदाय में दीक्षित हो गए थे। इसकी स्थापना करिश्माई उपदेशक ओलोफ हेनरिक लार्सन ने की थी। इन आप्रवासियों के आध्यात्मिक आदर्शवाद और भौतिक संघर्षों ने इस उपन्यास में आस्था, परंपरा और आधुनिकता के बीच तनाव को बखूबी उभारा है। उपन्यास का कथानक दो भौगोलिक क्षेत्रों में घटित होता है। इनमें से पहला डालारना है। यह स्वीडन का एक घोर परंपरावादी गाँव है। दूसरा भौगोलिक क्षेत्र फिलिस्तीन का येरुशलम है। वह स्थान जहाँ यह धार्मिक आप्रवासी आध्यात्मिक मोक्ष की खोज में गए हैं। उपन्यास का केंद्र इंगमार परिवार की कई पीढ़ियों तक चलने वाली कहानी है। यह डालारना गाँव के सबसे प्रतिष्ठित परिवारों में से एक है। उपन्यास का मुख्य पात्र इंगमार इंगमारसन अपनी पारिवारिक कृषि भूमि का उत्तराधिकारी बनने वाला है और उस पर अपने पूर्वजों की परंपरा को बनाए रखने का दायित्व है। इसी वक्त धार्मिक जोश से भरी पुनर्जागरण की एक लहर गाँव में फैलने लगती है। इंगमार की मंगेतर गेरट्रूड कई आस्थावान किसानों के साथ मिलकर यह निर्णय लेती है कि वह अपनी सारी संपत्ति बेचकर येरुशलम चली जाएगी ताकि वह वहाँ जाकर ईसा मसीह के दूसरे आगमन की प्रतीक्षा कर सके। इंगमार प्रेम और कर्तव्य के द्विविधा में फँस जाता है। उसे यह तय करना होगा कि क्या वह अपने दिल की सुनकर अपने प्रेम को चुने और गेरट्रूड के साथ येरुशलम चला जाए, या फिर स्वीडन में रहकर अपनी पुश्तैनी विरासत और परंपराओं को संजोए रखे। इंगमार का मानसिक संघर्ष ही उपन्यास की केंद्रीय थीम है। व्यक्तिगत इच्छाओं और सामुदायिक जिम्मेदारियों के बीच द्वंद्व, आस्था और व्यावहारिकता के बीच टकराव, आध्यात्मिक आदर्शवाद और सांसारिक कर्तव्यों के बीच संघर्ष। येरुशलम में यह आप्रवासी कठोर वास्तविकताओं से रूबरू होते हैं। बीमारियाँ, गरीबी, और एक विदेशी भूमि में जीवित रहने का संघर्ष– जिनकी कसौटी पर उनके आदर्शवादी सपने लगातार परखे जाते हैं। आस्था और बलिदान की व्यावहारिक सच्चाइयों पर गहरे सवाल उठाता यह उपन्यास फिलिस्तीन में हो रहे नरसंहार और धार्मिक उन्माद के इतिहास को समझने में भी उपयोगी है। एक देश से धार्मिक उन्माद में उठ कर किसी पवित्र भूमि की तलाश में पहुँचने वाले लोगों के लिए वहाँ के मूलनिवासी महज एक समस्या हैं जिसका एक खंडित इतिहास इस उपन्यास से झाँक जाता है।

चित्र 7 : मॉरबाका एस्टेट के अपने अध्ययन कक्ष में सेल्मा लागर्लूफ़

सेल्मा लागर्लूफ़ का साहित्य अपार है जिसमें से हम उनकी तीन रचनाओं की चर्चा ही यहाँ कर सके हैं। स्त्रियों के राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों की लड़ाई लड़ने वाली सेल्मा ने अपने साहित्य के रास्ते समाज में स्त्रियों के अधिकारों और उनके योगदान को दर्ज करने के लिए एक सतर्क कोशिश की है। उनके स्त्री पात्र बड़े ही मजबूत और निडर हैं। अंग्रेजी से बाहर भी साहित्य की दुनिया मौजूद है और प्रायः वह अंग्रेजी साहित्य से बढ़ी-चढ़ी हुई है, सेल्मा का लेखन यह दिखलाने के लिए पर्याप्त है। स्त्रियों की साहित्यिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक दुनिया में सहभागिता और उनकी प्रतिभा तथा योगदान को उचित स्थान दिलाने का एक लंबा संघर्ष रहा है। सेल्मा लागर्लूफ़ का साहित्य उन संघर्षों का एक ऐतिहासिक साहित्यिक दस्तावेज है और इसे उसी रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

कथा-कहानी : संक्षिप्त

हिंदीतर भारतीय लघुकथा संसार

अशोक भाटिया

(वरिष्ठ लेखक, हिन्दी लघुकथा में एक स्थापित और आदृत नाम)

email : ashokbhatiahes@gmail.com

असमिया: असमिया में लघुकथा को छितिगल्प कहते हैं। इसमें लघुकथाएँ कम लिखी गई हैं और उनका स्वरूप भी हिंदी से कुछ भिन्न है। भूपेन हजारिका,लक्ष्मीकांत बैजबरुआ, महिम बरा आदि ने ही प्रमुख रूप से लघुकथाएँ लिखी हैं। भूपेन हजारिका की 'अगुआ' और 'भरी थाली' अन्याय के प्रतिकार की लघुकथाएँ हैं।'भरी थाली' रचना में असम आंदोलन में गोलियों का शिकार हुए नरेन सैकिया की मां को लोग जगह-जगह मंच पर बिठाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। आखिर वह ऐसे नेताओं को कहती है– "नरेन अपने लक्ष्य के लिए लड़ा था। तुम लोग उसकी लाश की आग पर अपनी रोटी सेंकना चाहते हो, चले जाओ।" 'लोहित के लाल' और 'उग्रवादी' इनकी अन्य प्रमुख लघुकथाएँ हैं।

उर्दू : उर्दू में लघुकथा को 'अफ्सांचा' कहते हैं। सआदत हसन मंटो, राजेन्द्र सिंह बेदी, जोगिन्दर पाल और रतन सिंह उर्दू के प्रमुख भारतीय लेखक हैं। मंटो की लघुकथाएँ मुख्यतः 'सियाह हाशिए' में संकलित हैं,जो भारत-पाक विभाजन की विसंगतियों और निकृष्ट इंसानी सोच को 'तंज़' (व्यंग्य) की बुनावट के साथ रचती हैं। करामात,बेखबरी का फायदा, बंटवारा, पेशबंदी आदि उनकी बहुचर्चित लघुकथाएँ हैं। 'करामात' अंधविश्वास की बेमिसाल रचना है। पुलिस से बचने के लिए एक आदमी लूटी हुई शक्कर की बोरियां कुँए में डालने लगता है; साथ ही खुद भी चला जाता है। वह मर जाता है। शक्कर की वजह से कुँए का पानी पीने पर मीठा लगना ही था। लेकिन –"उसी रात से उस आदमी की कब्र पर दीए जल रहे हैं।" रतन सिंह की 'लकड़हारा और परी' भी प्रसिद्ध लघुकथा है।

ओड़िया : ओड़िया में लघुकथा को 'अणु गल्प', 'मिनी गल्प', 'आभास गल्प' आदि नामों से जाना जाता है; कोई एक नाम अभी स्वीकृत नहीं हुआ। इसकी पहली पीढ़ी के लघुकथा-लेखकों में यदुनाथ महापात्र ('शून्य के भीतर'), अध्यापक विश्वरंजन ('अग्निवृत्त', 'ऋतु परिक्रमा'), जगदीश मोहंती प्रमुख हैं। 'शून्य के भीतर' में कोणार्क की मूर्तियों के सन्दर्भ में, दार्शनिक धरातल पर, स्त्री-पुरुष के संवाद पाठक को नया विचार-सूत्र थमा जाते हैं। नए उभरे लेखकों में कैलाश पट्टनायक की 'अन्नपूर्णा', ईप्सिता षडंगी की 'नमकीन' लघुकथाएँ प्रमुख हैं। गोपीनाथ मोहंती, प्रतिभा राय भी निरंतर लिख रहे हैं।

कन्नड़ : माधवी एस. भंडारी के अनुसार कन्नड़ में लघुकथा के लिए 'नैनो कथा' शब्द का प्रयोग होता है। कन्नड़ की लघुकथाएँ हिंदी में अधिक नहीं मिलतीं। श्रीनिवास हावनूर की 'मौन का कल' पति के अपराध-बोध पर केन्द्रित है, जबकि सर्वज्ञ की 'तुलना' काव्यात्मक शैली में मानवेतर श्रेणी की रचना है, जिसका चिंतन-पक्ष पाठक को बाँध लेता है।

कश्मीरी : हिंदी में कश्मीरी की बहुत कम लघुकथाएँ मिलती हैं। अमीन कामिल की रचना 'फाटक' में शासन और प्रशासन की संवेदनहीनता दिखाई गई है, जबकि अख्तर मोहिउद्दीन की 'डल की सैर' स्त्री-पुरुष संबंधों पर सूक्ष्म संवेदना की रचना है।

गुजराती : गुजराती लघुकथा के क्षेत्र में मोहनलाल पटेल, विनोद भट्ट और कीर्तिकुमार पंड्या प्रतिनिधि नाम हैं। 'विदाई' मोहनलाल पटेल की अत्यंत मार्मिक रचना है। भैंस को बेचने पर वह बार-बार रस्सा तुड़ाकर वापिस आ जाती है, तो गणपत और कुंवर तीसरी बार उसे बेचने की हिम्मत नहीं कर पाते। कुंवर कहती है– "इक ढोर की आवभगत कर रहे हैं, उतनी बेटी के लिए नहीं कर सके।" दोनों अपने को विवाहित बेटी के हत्यारे समझते हैं। इनकी ही 'बेजान चिट्ठी' और 'स्मृति' अन्य श्रेष्ठ लघुकथाएँ हैं। विनोद भट्ट की, व्यंग्यात्मक शैली में लिखी, लघुकथाएँ मंटो के 'सियाह हाशिए' की याद दिला देती हैं। 'खोया-पाया', 'शांति-जुलूस', 'शांति-अपील' आदि इनकी उल्लेखनीय लघुकथाएँ हैं। कीर्तिकुमार पंड्या की लघुकथा 'आत्मवंचना' मध्यवर्गीय दोगलेपन को सहजता से उकेरती है।

तमिल : तमिल में लघुकथा के लिए कोई एक नाम अभी स्वीकृत नहीं हुआ। के. सुलोचना का मत है कि इसके लिए तमिल में 'कुट्टीकदैकल' शब्द अधिक संगत है। तमिल लघुकथाएँ मुख्यतः मूल्य-चेतना से संचालित हैं। सुप्रसिद्ध लेखक सुब्रह्मण्यम भारती की रचना 'कवि और लोहार' और 'शास्त्रीजी का धंधा' में उनका विद्रोही रूप दिखाई देता है। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य की 'नीम की तपस्या' में कड़वी और मीठी नीम के द्वारा बताया गया है कि कड़ुवे से लोग दूर रहते हैं, जबकि मीठे को पनपने नहीं देते।अखिलन की 'बंधन', चूड़ामणि की 'तारों की छाँव' तमिल की अन्य चर्चित लघुकथाएँ हैं।

तेलुगु : तेलुगु में लघुकथा के लिए 'चिन्न कथा' या 'कथानिका' शब्द का प्रयोग होता है। यहाँ लघुकथाओं की स्थिति अपेक्षाकृत कमज़ोर है; वह कहानी के संस्कारों से मुक्त नहीं हुई। कन्द्रेगुल श्रीनिवास राव की 'स्पर्श' और 'भोज्येषु माता' तथा वाई. के. मूर्ति की 'टेस्ट' जैसी कुछ श्रेष्ठ लघुकथाएँ अवश्य मिलती हैं। 'स्पर्श' में पुरुष और स्त्री-स्वभाव को एक ही प्रसंग में बड़े विश्वसनीय तरीके से प्रस्तुत किया गया है। 'भोज्येषु माता' स्त्री के मातृत्व का एक अन्य रूप प्रस्तुत करती है। 'टेस्ट' में पुरुष की मानसिकता को व्यंग्यात्मक बुनावट के साथ सामने लाया गया है।

पंजाबी : हिंदी के बाद लघुकथा पर सबसे अधिक काम पंजाबी में हुआ है। पंजाबी में इसे 'मिन्नी कहानी' कहते हैं। जिसके सूत्रधारों में जगदीश अरमानी, रोशन फूलवी, ओमप्रकाश गासो, अनवंत कौर,

शरण मक्कड़ आदि प्रमुख नाम हैं, जिन्होंने सत्तर के दशक में मिन्नी कहानी को, लेखन और संपादन के बल पर उभारा।

सन् 1989 से मिन्नी कहानी की नियमित पत्रिका 'मिन्नी' (त्रै.) की शुरुआत के साथ वार्षिक सम्मलेन भी प्रारंभ हो गए। एक विषय पर चर्चा और फिर रात-भर 'जुगनुआँ दे अंग-संग' नाम से मिन्नी कहानियों का पाठ और उन पर खुली चर्चा होती, जो आज तक जारी है। अब तक 'मिन्नी' पत्रिका के निरंतर 140 अंक आ चुके हैं, जिनमें से अनेक विषय-केन्द्रित विशेषांक हैं। इस संगठित-सुनियोजित आन्दोलन ने मिन्नी कहानी को पुख्ता आधार प्रदान किया। इसके पीछे श्यामसुंदर दीप्ति, श्यामसुंदर अग्रवाल, हरभजन खेमकरनी के साथ विक्रमजीत नूर और अब जगदीश राय कुलरियाँ और कुलविंदर कौशल की प्रमुख भूमिका रही है।

पिछले करीब पचास वर्षों की मिन्नी कहानी-यात्रा को देखने पर इसके चार प्रमुख स्तम्भ दिखाई देते हैं, जिनकी रचनाएँ मिन्नी कहानी के लिए आधार का काम करती हैं। वामपंथी चेतना के लेखक सुरिंदर कैले के अब तक चार संग्रह आ चुके हैं। आलोचक डॉ. अनूप सिंह ने इनको 'मॉडल मिन्नी कहानीकार' ठीक ही कहा है। महामारी, होनी, अरदास, मानव और प्रकृति, सीरी, पसंद, सर्जिकल स्ट्राइक, सूरज की परछाई आदि इनकी अनेक उल्लेखनीय मिन्नी कहानियाँ हैं। हरभजन खेमकरनी के अब तक तीन मिन्नी कहानी संग्रह छप चुके हैं। इनकी लघुकथाओं में एक सम्मोहन शक्ति है, जो पाठक को बरबस ही बाँध लेती है। डॉ. दीप्ति ने इनकी मिन्नी कहानियों को 'सपनों में सच की गुंजाइश तलाशती लघुकथाएँ' ठीक ही कहा है। चिकना घड़ा, बहाना, बदलती सोच, नज़र और नज़र, संवेदना, उपाय, बहू बनाम बहू, नज़र आदि इनकी अनेक उल्लेखनीय लघुकथाएँ हैं। समाजवादी चिन्तक और एक्टिविस्ट डॉ. श्यामसुंदर दीप्ति पंजाबी मिन्नी कहानी की रीढ़ हैं, जो इसकी विभिन्न भूमिकाओं को शिद्दत से निभाते आ रहे हैं।इनकी लघुकथाएँ मुख्य रूप से बेहतर समाज की चिंता और चिंतन से संचालित हैं। अब तक इनके तीन संगह आ चुके हैं। रिश्ता, हद, नाईटी, सुबह का इंतज़ार, हिम्मत, दिन-रात का फर्क, प्रशंसा आदि इनकी अनेक उल्लेखनीय लघुकथाएँ मिलती हैं। श्यामसुंदर अग्रवाल मिन्नी कहानी से सजग-समर्थ हस्ताक्षर हैं। अपनी अनेकविध भूमिकाओं द्वारा इन्होंने मिन्नी कहानी को निरंतर समृद्ध किया है। इनकी रचनाओं का मूल स्वर परिवार-समाज, शासन-प्रशासन में व्याप्त विसंगतियों और अन्याय का विरोधी स्वर है। चमत्कार, बेटी का हिस्सा, औरत का दर्द, संतू, टूटी हुई ट्रे, बेड़ियाँ आदि इनकी उल्लेखनीय लघुकथाएँ हैं।

निरंजन बोहा, जसबीर ढंड, सत्यपाल खुल्लर, नायबसिंह मंडेर आदि अन्य अनेक गंभीर लेखक मिन्नी कहानी को निरंतर समृद्ध कर रहे हैं।

बंगला : साहित्य, संगीत और संस्कृति की दृष्टि से समृद्ध बांग्ला-क्षेत्र में लघुकथा-साहित्य की भी समृद्ध परम्परा मिलती है। वहाँ इसे 'अनुगल्प' कहा जाता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर अनुगल्प के जनक माने जाते हैं। राज-विचार, प्रथम शोक, सुओरानी की साध, विदूषक, नूतन पुतुल आदि उनकी प्रमुख अनुगल्पें हैं। दूसरा बड़ा नाम है बनफूल, जो बांग्ला जगत में बहुत लोकप्रिय हैं। इनकी 578 कहानियों में 80-90 प्रतिशत अनुगल्पें ही हैं। नीमगाछ, मनू की माँ, चिंतामणि, तिलोत्तमा इनकी प्रमुख लघुकथाएँ हैं। वरिष्ठ कथाकार चन्दन चक्रवर्ती की रचना 'चे गेवारा की प्रतीक्षा में' एक प्रकार से विप्लवी आइकॉन गेवारा को, सकारात्मक सोच के साथ, श्रद्धांजलि कही जा सकती है। अशोक राय चौधरी की 'कोई एक अनागत संध्या' में सन पचपन हजार दो सौ की कल्पना कर गागर में सागर भरने का प्रयास हुआ है। बनफूल की रचना 'नीम का पेड़' कलात्मक ढंग से गृहलक्ष्मी की, घर में स्थिति का वर्णन करती है। वितस्ता घोषाल की 'कन्या दिवस' भयावह यथार्थ की अनुगल्प है। प्रगति मारुति की रचना 'लड़का किसका?' में बच्चे की एक पंक्ति रचना को उदात्त स्तर पर प्रतिष्ठित कर देती है। मुरदुल इस्लाम, मेघना दास बांग्ला के अन्य प्रमुख अनुगल्पकार हैं।

मणिपुरी : मणिपुरी में लघुकथाओं की क्षीण धारा मिलती है। इसमें लन्चेन्बा मीतै की एक्वाक्यीय रचना 'विलाप' बड़ी चर्चित रही है, देखें–

गणतंत्र ने अनुताप-भरी आवाज़ में रोते हुए कहा–"हे जगत के स्वामी, मुझे बन्दूक की नोंक से थोड़ी देर के लिए उतार दीजिए।"

इबोहल सिंह कांग्जम ने काफी लघुकथाएँ लिखी हैं। सब्सिडी ग्रांट, क्या नहीं कर सकता– दोनों रचनाओं में भ्रष्ट समाज का विद्रूप चित्रित हुआ है।

मराठी : मराठी में लघुकथा के लिए 'कथिका' आदि का प्रयोग किया जाता है।अस्सी के दशक में सूर्यनारायण रणसुभे की मराठी लघुकथाएँ 'अनुभव-कथा' और 'लघुत्तम कथा' नाम से छपीं।मराठी में लघुकथा की परंपरा विकसित नहीं हो पाई। वि।स।खांडेकर ने मानवीय स्वभाव को दिखाने वाली कुछ लघुकथाएँ मानवेतर शैली में अवश्य लिखी हैं, जिनमें 'गुमान', 'ईर्ष्या', 'फूल और पत्थर' प्रमुख हैं।

मलयालम : मलयालम में छोटी कथा के लिए 'चेरिया कथा' और बहुत छोटी कथा के लिए 'तीरे चेरिया कथा' शब्द का प्रयुक्त होता है, किन्तु मलयालम लघुकथा के शोधार्थी डॉ. रथीश निराला इसे लघुकथा कहना ही ठीक मानते हैं। पी. के. पारक्कटवु के बहुचर्चित संग्रह 'सन्नाटे का चीत्कार' की अधिकतर लघुकथाएँ प्रयोगधर्मी हैं और दार्शनिक पुट लिए हुए हैं। मशीन, पाजेब, सतीप्रथा आदि उनकी ऐसी ही उल्लेखनीय लघुकथाएँ हैं। एस. के. पोट्टेकाट की अत्यंत संवेदनशील रचना 'ऊंट' के अतिरिक्त पी. वत्सला की 'शीलवती', एन. उन्नी की 'कबूतरों से भी खतरा है', पुनत्तिल कुंजबदुल्ला की 'शिक्षालय' आदि का पाठ करना भी बहुत जरूरी है।

मैथिली : मैथिली में कुछ लेखक इसे लघुकथा,जबकि कुछ इसे बीहनि कहते हैं। मैथिली में बड़े आशयों की लघुकथाएँ कम हैं, किन्तु जीवन के छोटे-छोटे सच बड़ी मात्रा में उकेरे गए हैं। अनमोल झा, मिहिर झा, कुंदन कर्ण, जयंती कुमारी, देवशंकर नवीन आदि मैथिली में निरंतर लघुकथाएँ लिख रहे हैं।

सिन्धी : सिन्धी में लघुकथा के लिए 'मिनी कहाणी' शब्द का प्रयोग होता है। अस्सी के दशक में सिन्धी में अन्य भाषाओं की लघुकथाओं का अनुवाद हून्दराज बलवाणी आदि के द्वारा नियमित रूप से होने लगा था। घनश्याम सागर, जयंत रेलवाणी, हून्दराज बलवाणी, मोतीलाल जोतवाणी, वासुदेव सिन्धु 'भारती' सिन्धी मिनी कहाणी के प्रमुख लेखक हैं।

ज्ञान का महाकुम्भ

राकेश अचल

(वरिष्ठ लेखक, पत्रकार)

मुझे 144 साल बाद प्रयागराज में सजे-धजे महाकुम्भ में शामिल न होने का अफसोस तो है लेकिन मै संतुष्ट हूँ कि मैंने अज्ञान से मुक्त होने के लिए विलुप्त हुई सरस्वती को तलाशने के लिए दिल्ली में लगने वाले सारस्वत ज्ञान के वार्षिक महाकुंभ में डुबकी लगा ली। दिल्ली में पिछले 51 वर्षों से ज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए यह वार्षिक सारस्वत महाकुम्भ आयोजित किया जा रहा है। इसका नाम हालाँकि नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला है और यह प्रकाशन जगत में एक प्रमुख कैलेंडर कार्यक्रम है।

वर्ष 2025 का यह ज्ञानकुंभ 1 से 9 फरवरी 2025 तक भारत मंडपम, नई दिल्ली में नवनिर्मित हॉल 2-6 (भूतल) में आयोजित किया गया। मेले का आयोजन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन) द्वारा किया जाता है। इसमें कोई शाही दिन नहीं होता। कोई अखाड़ा नहीं होता, कोई पीठाधीश्वर, शंकराचार्य या महामंडलेश्वर नहीं होता। वीआईपी कल्चर से भी ज्ञानकुंभ मुक्त है। यहाँ हर घाट पर जाकर आम आदमी अपनी ज्ञान पिपासा शांत कर सकता है।

ज्ञान कुंभ यानि विश्व पुस्तक मेले में लेखक, पाठक और प्रकाशक एक घाट पर पानी पीते हैं। कोई विधर्मी वर्जित नहीं है। यहाँ आपको हर पंथ का पंथी मिलेगा ज्ञान त्रिवेणी में डुबकियाँ लगाते. दक्षिण पंथी, वामपंथी, समाजवादी, अर्बन नक्सली, सब यहाँ आते- जाते हैं।

इस कुंभ में मीलों पैदल नहीं चलना पड़ता। यहाँ के घाट मनोहर और पंक रहित होते हैं। यहाँ भंडारे नहीं होते लेकिन आप पैसा देकर खान-पान की हर सुविधा हासिल कर सकते हैं। यहाँ नामालूम से लेकर स्थापित-विस्थापित, ख्यातिनाम और अल्पज्ञात सभी तरह के प्रकाशक, लेखक और पाठक एक दूसरे से मिलते दिखाई देते है। यहाँ आप पाठक से लेखक और लेखक से प्रकाशक तक बन सकते हैं। यहाँ आपको मुफ्त में कुछ नहीं मिलता। हाँ, 5 ₹ से लेकर हजारों रुपये तक की पुस्तकें यहाँ उपलब्ध हैं। यहाँ लेखक खुद सेल्समैन की भूमिका में होता है। किताबों का फटाफट विमोचन भी होता है।

बच्चों में साहित्य और पढ़ने की आदत को बढ़ावा देने वाली कई गतिविधियाँ जैसे कि कहानी सुनाने के सत्र, कार्यशालाएँ, पैनल चर्चाएँ, संवादात्मक सत्र, प्रश्नोत्तरी, प्रतियोगिताएँ आदि के साथ-साथ बाल लेखक कॉर्नर का आयोजन आकर्षक ढंग से डिज़ाइन किए गए बच्चों के मंडप में किया जाता है। प्रसिद्ध लेखकों और चित्रकारों के साथ-साथ शिक्षा और प्रकाशन क्षेत्र के पेशेवरों द्वारा संचालित इन गतिविधियों में विभिन्न सरकारी और निजी स्कूलों/गैर-सरकारी संगठनों के शिक्षकों और बच्चों के साथ-साथ समुदाय से जुड़े लोगों की भारी भागीदारी देखी जाती है।

राष्ट्रीय डिजाइन संस्थान, अहमदाबाद द्वारा डिजाइन किया गया एक समर्पित थीम मंडप, पुस्तक मेले की थीम को रचनात्मक, ग्राफिक्स, प्रतिष्ठानों, पुस्तकों, दीवारों, कलाकृतियों आदि के साथ प्रदर्शित करता है। थीम मंडप में मेले के दिनों में थीम के इर्द-गिर्द कई साहित्यिक सत्र और सांस्कृतिक गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं।

ज्ञानकुंभ में विचारों को साझा करने और साहित्यिक समझ को बढ़ाने के लिए एक आकर्षक मंच है। विदेशी प्रदर्शकों/मिशनों/दूतावासों/सांस्कृतिक केंद्रों/पुस्तक प्रचार एजेंसियों को पुस्तक लॉन्च, पैनल चर्चा, साहित्यिक कार्यक्रम और बच्चों के साथ-साथ वयस्कों के लिए कार्यशालाओं के आयोजन के लिए इवेंट कॉर्नर पर स्लॉट बुक करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

मेले के विभिन्न हॉलों में बनाए गए खूबसूरती से डिज़ाइन किए गए लेखक कॉर्नर घरेलू प्रकाशकों, लेखकों और पुस्तक प्रेमियों के लिए संवाद, पैनल चर्चा, पुस्तक लॉन्च के लिए सही मंच प्रदान करते हैं। बुक टॉक और लेखक मंच के नाम से उपयुक्त; ये कॉर्नर जीवंत साहित्यिक गतिविधियों का पर्याय बन गए हैं और आगंतुकों के लिए बैठक स्थल के रूप में भी काम करते है।

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले के दौरान, तथा उत्सव को और अधिक रोचक बनाने के लिए, एनबीटी इस क्षेत्र के अग्रणी संगठनों जैसे गीत एवं नाटक प्रभाग, साहित्य कला परिषद, आदि द्वारा मेले में सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ भी आयोजित करता है। यहाँ सबसे अच्छी बात ये है कि किसी नेता का कट-आउट या कोई झंडा नहीं दिखता।

इस ज्ञानकुंभ में इस बार भी मै सपत्नीक गया। बच्चों के लिए किताबें खरीदीं। यहाँ माला बेचने वाली कंजी आंखों की कोई मोनालिसा, कोई आईआईटियन बाबा, अपनी ऊटपटाँग हरकतों और वेशभूषा से हैरान करने वाला भी कोई व्यक्ति नजर नहीं आता। इस बार आप यदि ज्ञान महाकुम्भ में डुबकी लगाने से चूक गये हों तो कोई बात नहीं। अगले साल आइए। इसके लिए 4-12-144 वर्ष का इंतजार करने की कोई जरूरत नहीं। इसे तो हर साल लगता है।

और पुस्तकों की यह खास बात है कि आप इस गंगा को लगा सकते हैं घर भी ले जा सकते। जब चाहे अपनी सुविधा से इसमें डुबकी लगा सकते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति का 22वाँ द्विवार्षिक कुम्भ

आतिथेय : उत्तर-पूर्व ओहायो शाखा

यह 'विश्वा' के प्रकाशन 41वाँ वर्ष है और समिति के 22वाँ द्विवार्षिक अधिवेशन शुभ लग्न। खुशी और मूल्यांकन का दिन। नए लक्ष्यों और उड़ानों के आकाश में पर तौलने का दिन। उत्सव और उल्लास का क्षण। अपनों से मिलने बतियाने और संबंधों को प्रगाढ़ बनाने का दिन।

अधिवेशन का आयोजन 2-3 मई 2025 को उत्तर-पूर्व ओहायो शाखा द्वारा हो रहा है। वैसे तो 'संवाद' के माध्यम से समिति की गतिविधियों की जानकारी मिलती ही रहती है फिर भी यहाँ हम कुछ मुख्य गतिविधियों को विशेषरूप से प्रस्तुत कर रहे हैं।

परिवार के नए सदस्यों का स्वागत

1 जून 2023 से दिसंबर 2024 तक की अवधि में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति-परिवार में 44 नए सदस्य शामिल हुए। सभी का हार्दिक स्वागत! आशा है आप सब का साथ-सहयोग निश्चित ही समिति की क्षमता और कार्यकुशलता में वृद्धि करेगा। विश्वास है कि हम सब मिलकर स्वयं और परिवेश को और बेहतर बना सकेंगे।

1.	डॉ. अमिताभ मिश्रा	एल्लिकोत्त सिटी मेरीलैंड
2.	डॉ. संदीप दुबे	कारमेल इंडियाना
3.	श्री प्रताप सिंह	बेल्ट्सविल्ले मेरीलैंड
4.	श्री महेंद्र उपाध्याय	नैशविल टेनेसी
5.	श्री अनुराग गुप्ता	मिडिलबर्ग हाइट्स ओहायो
6.	श्रीमती मंजु सिंह	ग्रेट फाल्स वर्जीनिया
7.	श्री अजय बंसल	इरविंग टेक्सास
8.	श्री नवीन अग्रवाल	यॉर्कटाउन इंडियाना
9.	श्री बनवारी लाल गौड़	नई दिल्ली
10.	श्री श्रीधर नायर	सोलन ओहायो
11.	डॉ. महेश गोयल	ज़ोंसविल्ल इंडियाना
12.	श्री अनिल गुप्ता	कारमेल इंडियाना
13.	श्रीमती अल्पा शाह	सुगरलैंड टेक्सास
14.	श्री प्रवीण गुप्ता	लेविसविल टेक्सास
15.	श्री प्रीतम कुमार	लेविसविल टेक्सास
16.	श्री हेमंत गजारावाला	मिसौरी सिटी टेक्सास
17.	श्री अशोक कुमार	मैकमरे पेन्सिल्वेनिया
18.	श्री आशीष मंदोंवारा	स्ट्रोंग्सविल ओहायो
19.	डॉ. हीरा फोतेदर,	एवन लेक ओहायो
20.	श्री अजय साँखला,	सोलन ओहायो
21.	श्री भरत कुमार पटेल	ब्रॉडव्यू हाइट्स ओहायो
22.	श्रीमती ज्योति गुप्ता	गेट्स मिल ओहायो
23.	श्री विजय शाह	कापली ओहायो
24.	श्री प्रद्युम्न शर्मा	नार्थ ओल्मस्टेड ओहायो
25.	डॉ. विकास जैन	वेस्टलेक ओहायो
26.	श्रीमती पारुल बाफना	वेस्टलेक ओहायो
27.	श्रीमती तृप्ति तिवारी	शार्लेट नार्थ केरोलिना
28.	कुमारी नेहा कटारिया	शार्लेट नार्थ केरोलिना
29.	श्रीमती शशि अग्निहोत्री	फ्रेंक्लिन इंडियाना
30.	डॉ. अंजना सिंह सेंगर	नॉएडा उत्तर प्रदेश
31.	श्रीमती प्रिया शर्मा	अदेल्फी मिसौरी
32.	श्री गौरव झावेरी	सुगरलैंड टेक्सास
33.	श्री रमेश चेरिविराला	सुगरलैंड टेक्सास
34.	श्री महेश वाधवा	क्यर्प्रेस टेक्सास
35.	श्री हसमुखभाई पटेल	हॉस्टन टेक्सास
36.	श्रीमती मालती मेहता	शार्लेट नार्थ केरोलिना
37.	श्री प्रफुल मेहता	शार्लेट नार्थ केरोलिना
38.	श्री प्रसन्न कमलाकर	शार्लेट नार्थ केरोलिन
39.	श्री शरत चंद्रा	अक्रोन ओहायो
40.	श्री संजीव बंसल	सोलन ओहायो
41.	डॉ. अनीता भारद्वाज	सोलन ओहायो
42.	श्री नरेन्द्र गुप्ता	रिमाइंडरविल्ले ओहायो
43.	श्री निखिल गुप्ता	औरोरा ओहायो
44.	श्री पुनर्वसु पटेल	कापली ओहायो

श्रद्धांजलि

उषा गुप्ता, 86 वर्ष
लखनऊ (आजीवन सदस्य)

आजीवन सदस्य **श्री कुलदीप कुमार गुप्ता** का 72 वर्ष की आयु में न्यूयार्क में निधन

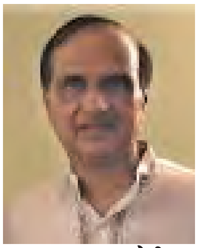

मधुसूदन झवेरी

समिति परिवार के वरिष्ठ सदस्य, सभी कार्यक्रमों में उत्साहपूर्वक उपस्थित रहने वाले, हिन्दी, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी और मराठी के ज्ञाता; एम आई टी में स्ट्रक्चरल इंजीनीयरिंग के प्रोफेसर रहे मधु जी संस्कृत की शब्द निर्माण शक्ति पर निरंतर लिखते और छपते रहे। विनम्र श्रद्धांजलि!

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी दिवस : प्रतियोगिता : सम्मान समारोह

भारतीय दूतावास, वाशिंगटन डीसी और अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति के संयुक्त तत्वावधान में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी दिवस 2025 के उपलक्ष्य में अमेरिका के युवाओं के लिए तीन प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

विजेताओं को सम्मानित करने के लिए भारतीय दूतावास ने 14 जनवरी 2025 शाम को अपने परिसर में एक विशेष समारोह आयोजित किया। कार्य दिवस होने के बावजूद हमारे दो विजेता अपने अभिभावकों के साथ समारोह में उपस्थित थे।

दूतावास के श्री जग मोहन, मंत्री (समुदाय एवं कार्मिक), सुश्री नेहा सिंह, प्रथम सचिव (प्रेस, सूचना एवं संस्कृति), श्री रवीश कुमार, द्वितीय सचिव (प्रेस, सूचना एवं संस्कृति) एवं अन्य प्रतिनिधि थे।

अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति की न्यासी समिति से श्री आलोक मिश्र, श्री तरुण सुरती (न्यासी अध्यक्ष), डॉ शैल जैन, राष्ट्रीय अध्यक्ष, चौधरी प्रताप सिंह, स्थानीय शाखा संयोजक और स्थानीय समुदाय के लोग इस समारोह में शामिल हुए।

इस कार्यक्रम में दूतावास ने जर्मनटाउन स्थित विश्व हिंदू परिषद के बाल विहार हिंदी कक्षाओं के समन्वयक श्री मनीष ठौरी और पूर्व में आयोजित कविता प्रतियोगिता के विजेता छात्रों को भी आमंत्रित किया। हम इस विद्यालय के सभी बच्चों और उनके अभिभावकों को भी हार्दिक बधाई देते हैं।

प्रतियोगिता के निर्णायक मण्डल के विद्वान सदस्यगण सर्व श्री डॉ राजीव रंजन, मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी, कुसुम नापजीक ड्यूक यूनिवर्सिटी, साधना कुमार न्यूयार्क, रश्मि चोपड़ा, ओहायो पब्लिक हाई स्कूल का समिति की ओर से हार्दिक आभार।

पुरस्कृत प्रतिभागियों की रचनाएँ इस प्रकार हैं–

भाषण प्रतियोगिता : अमेरिका में रहने वाले युवा हिन्दी क्यों सीखें ?

प्रथम स्थान

अन्तरा वैष्णवी, कक्षा 10, टेनेसी

नमस्कार, मेरा नाम अंतरा वैष्णवी है और मैं दसवीं कक्षा की छात्रा हूँ। आज मैं आपसे एक ऐसे विषय पर बात करने आई हूँ जो आपके भविष्य के साथ-साथ आपकी जड़ों, आपकी पहचान से भी जुड़ा है। और वह विषय है हिंदी भाषा, जो भारत की समृद्ध संस्कृति, इतिहास और परंपराओं को जानने का माध्यम है।

भारत एक प्राचीन भूमि है जहाँ ज्ञान, कला और संस्कृति का भंडार है। यहाँ विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं, लेकिन हिंदी एक ऐसी भाषा है जो भारत की आत्मा है और हमें एक सूत्र में बाँधती है।

हिंदी सीखने से आप भारत के महान साहित्य, वेदों, पुराणों, उपनिषदों, रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों को समझ सकेंगे। ये ग्रंथ न केवल धार्मिक महत्व रखते हैं, बल्कि जीवन जीने की कला, नीति, और दर्शन का भी ज्ञान देते हैं। हिंदी संस्कृत का ही एक विकसित रूप है जिसकी देवनागरी लिपि और शब्दावली की जड़ें संस्कृत में हैं, इसीलिए हिंदी जानने वालों के लिए संस्कृत सीखना अपेक्षाकृत आसान हो जाता है।

हिंदी आपको विश्व भर में फैले भारतीयों से जोड़ती है। हिंदी आपको एक ऐसा माध्यम प्रदान करती है जिससे आप अपनी संस्कृति और अपने लोगों से जुड़े रह सकते हैं। बॉलीवुड फ़िल्में, संगीत और साहित्य, जो दुनिया भर में लोकप्रिय हैं, हिंदी भाषा के माध्यम से भारतीय संस्कृति को विश्व स्तर पर पहुँचाते हैं और लोगों को एक दूसरे से जोड़ते हैं।

आज के वैश्विक युग में, हिंदी का महत्व और भी बढ़ गया है। भारत एक तेजी से उभरती हुई अर्थव्यवस्था है, और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए हिंदी का उपयोग कर रही हैं, इसलिए हिंदी जानने से आपको अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और

संबंधों में भी लाभ मिल सकता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने ठीक ही कहा है, "निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल"। अपनी भाषा की उन्नति ही हमारी सच्ची उन्नति है। हिंदी सीखकर आप न केवल अपनी मातृभाषा का सम्मान करेंगे, बल्कि भारत की गौरवशाली परंपरा को भी आगे बढ़ाएँगे।

हिंदी भाषा में ऐसे कई शब्द हैं जिनका अनुवाद दूसरी भाषाओं में नहीं किया जा सकता क्योंकि इन शब्दों का गहरा सांस्कृतिक अर्थ होता है जो अनुवाद करने पर खो जाता है। राजीव मल्होत्रा जी अपनी पुस्तक "संस्कृत नॉन-ट्रांसलेटेबल्स" में इस बात पर ज़ोर देते हैं कि संस्कृत के कुछ शब्दों, जैसे "अग्नि", "वायु", "ॐ", "शक्ति", "पूजा" आदि का अंग्रेजी में अनुवाद नहीं करना चाहिए।

हिंदी भाषा ना सिर्फ भारत की सांस्कृतिक विरासत की वाहक है, बल्कि यह आपको वैश्विक स्तर पर जोड़ती है और भविष्य के लिए नए द्वार खोलती है। तो आइए, हम सब मिलकर हिंदी सीखें, अपनी संस्कृति को अपनाएँ, और विश्व में भारत का नाम रोशन करें!

धन्यवाद! वंदे मातरम्!

द्वितीय स्थान

स्तव्य अग्रवाल, कक्षा 9, टेक्सास

आदरणीय राजदूत महोदय, भारतीय मिशन के अधिकारी गण, साथियों और मित्रो!

14 सितंबर, 1947 को हिंदी को आधिकारिक तौर पर भारत की राजभाषा का दर्जा दिया गया था। दो सौ साल की गुलामी के बाद जब देश आजाद हुआ तो हमारे संस्थापक पूर्वजों ने हिंदी के माध्यम से देश को एक सूत्र में जोड़ने का सपना देखा था। एक ऐसी भाषा जो पूरे देश को आपस में जोड़े।

लेकिन हम तो भारत से हजारों किलोमीटर दूर यहां अमेरिका में रह रहे हैं, तो फिर हम हिंदी क्यों सीखें? अमेरिका में रहकर अगर हिंदी नहीं सीखते हैं तो ऐसा क्या है जो हम मिस करेंगे? कुछ ऐसे ही सवाल मेरे मन में भी थे और आज वही मेरे अनुभव मैं आपके साथ साझा करना चाहता हूँ।

नमस्ते! मेरा नाम स्तव्य अग्रवाल है, मैं नौवीं कक्षा में पढ़ता हूँ और ह्यूस्टन, टेक्सास में पिछले 12 सालों से रह रहा हूँ।

आज सारे संसार की जनसंख्या क़रीब 8 बिलियन है, जिसमें से अकेले भारत की जनसंख्या 1 बिलियन से ऊपर है। भारत में हर प्रांत में हिंदी पहली, दूसरी या फिर तीसरी भाषा के तौर पर लिखी, पढ़ी और बोली जाती है। इस हिसाब से यह संसार की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। कहने का मतलब यह है कि अगर आप हिंदी नहीं सीख रहे हैं, तो आप खुद को संसार की एक बहुत बड़ी जनसंख्या से, उसके अनुभवों से दूर कर रहे हैं।

मेरी अम्मा और बाबा जी, जो भारत में रहते हैं, कुछ महीने पहले हमारे साथ ह्यूस्टन में रहने आए थे। उनके साथ रहकर मैंने बहुत कुछ सीखा। मेरी अम्मा रात को कहानियाँ सुनातीं और बाबा जी मुझे कुछ भारत के किस्से भी सुनाते।

और यह सब संभव हो पाया क्योंकि मैं उनसे हिंदी में बात कर पाया। अगर मुझे हिंदी नहीं आती, तो उनकी बातें या उनके साथ का आनंद नहीं ले पाता।

एक और बड़ा कारण हिंदी सीखने का है हमारी हिंदुस्तानी विरासत, जिसका हिंदी एक बहुत बड़े रूप में प्रतिनिधित्व करती है। हिंदी की कविताएँ, रामायण की चौपाइयाँ, बॉलीवुड के गाने, अलग-अलग खाने की चीज़ों के हिंदी में नाम - ये सब हमारी विरासत का हिस्सा हैं। उदाहरण के तौर पर हिंदी गाने मुझे बहुत पसंद हैं, लेकिन अगर उनका मतलब समझ नहीं आए तो गाना गाते हुए या फिर सुनते हुए शब्दों को महसूस करना बहुत ही मुश्किल है। और इस तरह से हिंदी मुझे मेरी विरासत के बहुत करीब रखती है।

अंत में यही कहूँगा कि भाषा किसी भी देश की संस्कृति की पहचान है। हम भारत में रहें या फिर अमेरिका में, हमारी पहचान हर कदम पर हमारे साथ चलती है। हमारे पासपोर्ट का रंग हमारी पहचान निर्धारित नहीं करता है। और इसीलिए यही मान्य है कि हम अपनी इस विरासत को बनाए रखें। अगर किसी वजह से वह धुँधली हो चली है तो उसे फिर से तराशें और सराहें।

भारतेन्दु की इन पंक्तियों के साथ अपनी वाणी को विराम दूँगा:

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।

ध्यान के लिए धन्यवाद। नमस्ते!

तृतीय स्थान

राधा पारीक, कक्षा 12 ओहायो

नमस्ते। मेरा नाम राधा पारीक है और मैं ओहायो राज्य के बीचवुड शहर में बारहवीं कक्षा की विद्यार्थी हूँ।

भाषा सिर्फ़ संवाद ही नहीं अपितु संस्कार का माध्यम है। कोई भी भाषा मात्र शाब्दिक अभिव्यक्ति नहीं अपितु एक सभ्यता और संस्कृति से जुड़ने की वृत्ति है; जिसमें उसकी मातृ भाषा एक आवश्यक उत्प्रेरक का कार्य करती है। मुझे इस बात का गर्व है कि मेरी मातृ भाषा, विश्व की पाँच सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक, हिन्दी भाषा है।

मैंने जन्म भले ही अमेरिका में लिया हो परंतु मेरी जन्मदात्री कोख भारतीय है; इसलिए अंग्रेजी चाहे मेरी नैसर्गिक भाषा हो, हिंदी मेरा

अस्तित्व भी है और अभिव्यक्ति की प्राणवायु भी। मेरी धमनियों में विश्व की उसी पुरातन भारतीय संस्कृति का रक्त बहता है, जिसने वसुधैव कुटुंबकम् के भाव से सम्पूर्ण विश्व को योग, चिकत्सा, मनोविज्ञान और अध्यात्म का शाश्वत ज्ञान दिया।

मैं अपने आपको सौभागशाली समझती हूँ कि मैं आधुनिक युग में विश्व के सबसे प्राचीन लोकतंत्र अमेरिका की नागरिक भी हूँ और विश्व के सबसे विशाल और उत्कर्ष लोकतंत्र भारत की सांस्कृतिक राजदूत भी। यह दुर्लभ संयोग मुझ सरीखी अप्रवासी भारतीयों की दूसरी पीढ़ी के युवाओं के लिए अतुलनीय अवसर भी है और एक बड़ी चुनौती भी। अवसर इसलिए की पूर्व और पश्चिम की इन दो महान संस्कृतियों के बीच सेतु बाँधने का पुनीत कार्य हमारे काँधे पर है; और चुनौती है इस सेतु निर्माण के सबसे आवश्यक मूलयंत्र यहाँ के समाजों की मूल भाषा को लिखने, पढ़ने और समझने की। अंग्रेजी और हिंदी भाषा इस सेतु निर्माण के दो मुख्य आधार हैं।

अपनी भारतीय सांस्कृतिक विरासत को आत्मसात् करने के लिए मेरे लिये यह आवश्यक है कि मैं इस भाषा का ना सिर्फ़ विधिवत अध्ययन करूँ अपितु औपचारिक उपयोग भी। ऐसे में घर में चल रहा माता पिता का संवाद, मेरी नानी और दादी का अमेरिका प्रवास और अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति द्वारा संचालित वार्षिक ग्रीष्मकालीन हिन्दी शिविर ना सिर्फ़ मेरी हिंदी की प्रथम पाठशाला हैं अपितु भारतीय सांस्कृतिक चेतना के आधार भी।

मुझे पूरा विश्वास है कि इसी क्रम में भारतीय दूतावास द्वारा आयोजित हिंदी भाषा के संवाद की यह प्रतियोगिता, मेरी पीढ़ी के युवाओं को हिंदी भाषा के प्रयोग हेतु प्रोत्साहित कर, भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के वैश्विक विस्तार में एक मील का पत्थर सिद्ध होगी। धन्यवाद

जय हिंदी-जय भारत !!

भारतीय संस्कृति और परंपराएँ

प्रथम स्थान

अवनी रामरक्षानी, कक्षा 11, टेक्सास

हमारा भारत एक संस्कृति समृद्ध देश है। भारतीय प्राचीन ग्रंथों में संस्कृति का अर्थ संस्कार से भी माना गया है। संस्कृति किसी भी देश, जाति और समुदाय की आत्मा होती हैं, जिनके सहारे वह अपने आदर्शों आदर्शों एवं जीवन मूल्यों आदि का निर्धारण करता है। जीने की कला हो, या विज्ञान और राजनीति का क्षेत्र, भारतीय संस्कृति का सदैव विशेष स्थान रहा है। भारतीय संस्कृति की निरंतरता, आज भी, करोड़ों लोगों को उससे जुड़ा हुआ महसूस कराती है।

संस्कृति और परंपरा में अंतर है–परंपराएँ संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती हैं। गुरु-शिष्य परंपरा, दीपावली, दशहरा जैसी परंपराएँ, सदियों से हमारे जीवन का हिस्सा रही हैं। भारतीय परंपरा में समय, तिथि और मुहूर्त को पवित्र माना गया है, और यह अमूल्य ज्ञान हमारे साहित्य में समाहित है।

भारतीय संस्कृति के चार प्रमुख मूल्य– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– हमारे जीवन का मार्गदर्शन करते हैं। "सादा जीवन, उच्च विचार" की परंपरा आज भी प्रासंगिक है, लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से यह कमजोर हुई है। हम अक्सर बिना सोचे पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने के लिए ललचाते हैं। परिवर्तन स्वाभाविक है, लेकिन यह हमारे देश और संस्कृति के पतन का कारण नहीं बनना चाहिए।

कभी-कभी परंपराओं के नष्ट हो जाने पर, आवश्यकता अनुसार, उसका पुनर आरंभ भी होता है– जैसे गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥ ४.२ ॥

जो राजयोग प्राचीन काल में विद्वान राजर्षियों को नियत था, और कालचक्र के प्रभाव से जिसकी परंपरा नष्ट हो गई थी, उसका पुनरुद्धार भगवान कृष्ण ने गीता द्वारा पुनः किया और भागवत धर्म के नाम से उसकी फिर से स्थापना कर दी। भारतीय संस्कृति एक निरंतर प्रवाहित जीवन धारा है। इसका संरक्षण हमारी जिम्मेदारी है, क्योंकि यदि हम अपनी संस्कृति खो देंगे, तो हम अपना अस्तित्व भी खो देंगे।

आज इस विषय पर मुझे प्रसिद्ध कवि इकबाल द्वारा लिखी गयी यह चार पंक्तियाँ याद आ रही है–

यूनान, मिश्र, रोमां सब मिट गए जहां से,
अब तक मगर है बाकी निशां हमारा ।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे ज़माँ हमारा ।

जय हिन्द। जय भारत।

द्वितीय स्थान

अनिका वर्मा, कक्षा 10, मेरीलैंड

नमस्ते!

क्या आप जानते हैं, जो पेड़ अपनी जड़ों से कट जाता है, वह कब तक खड़ा रह सकता है? यही सवाल हमें अपने जीवन में भारतीय संस्कृति और परंपराओं के महत्व पर सोचने पर मजबूर करता है।

“संस्कृति वह है जो हमारे भीतर के अंधकार को दूर करे।”
–स्वामी विवेकानंद

भारतीय संस्कृति सिर्फ़ त्योहारों और रीति-रिवाजों तक सीमित नहीं है। यह है हमारी पहचान, हमारी जड़ें। अमेरिका में रह रहे हमारे युवा अक्सर इस बहस में उलझ जाते हैं कि आधुनिकता और परंपरा में किसे चुना जाए। लेकिन क्या हमने कभी सोचा है कि भारतीय संस्कृति हमें क्या सिखाती है? यह हमें धैर्य, आदर, और परिवार का महत्व सिखाती है।

संस्कृति का मतलब केवल संस्कारों का पालन करना नहीं है; यह हमारे जीवन को संवारने का तरीका है। भारत की विविधता हमें सिखाती है कि भले ही हम अलग-अलग भाषाएँ बोलते हों, त्योहार मनाते हों, लेकिन हमारी आत्मा एक है।

अमेरिका में रहकर भारतीय संस्कृति को अपनाना न केवल हमें अपनी पहचान बनाए रखने में मदद करता है बल्कि हमें दूसरों को अपनी संस्कृति से परिचित कराने का मौका भी देता है। जैसे गरबा, दीवाली पार्टी, या गणेश उत्सव जैसे आयोजन भारतीयता को जीवित रखते हैं और समुदाय को जोड़ते हैं।

हमारे त्योहारों में भी एक अनोखा जादू होता है। अमेरिका में, मैंने देखा कि हमारे त्योहारों में शामिल होकर लोग कितने उत्साहित हो जाते हैं। मुझे गर्व होता है जब मैं स्कूल में अपने दोस्तों को रंगों से खेलते हुए या दिवाली पर पटाखे जलाते हुए देखती हूँ। यह मुझे याद दिलाता है कि भारतीय परंपराएँ किसी को भी जोड़ सकती हैं। जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा था, “हमारी संस्कृति हमारे भविष्य का आईना है। एक संस्कृति को केवल तभी बचाया जा सकता है जब वह खुले दिल से नई चीजों को अपनाने को तैयार हो।”

भारतीय खाने की बात करें, तो यह मसालों का एक जादू है। मेरी माँ जब राजमा चावल बनाती हैं, तो घर की खुशबू मेरे सभी दोस्तों को खींच लाती है। अमेरिका में पिज़्ज़ा और बर्गर के बीच, समोसे और डोसा खाकर लगता है कि मैं भारत के करीब हूँ। खाने में जो विविधता है, वह हमारी संस्कृति की कहानी कहती है हर राज्य का अपना स्वाद, अपनी परंपरा।

अमेरिका में, मैं दो संस्कृतियों के बीच रहता हूँ। यह आसान नहीं है, लेकिन यह मुझे मजबूत बनाता है। यहाँ रहकर मैंने सीखा है कि कैसे अपनी जड़ों को याद रखते हुए नई चीजों को अपनाया जा सकता है। मुझे गर्व है कि मैं उस धरोहर का हिस्सा हूँ, जो हजारों साल पुरानी है और जिसने आज तक अपनी चमक नहीं खोई। जो अपनी जड़ों से जुड़ा रहता है, वही सबसे ऊँचा उठता है। हमारी संस्कृति हमें जमीन से जुड़े रहने और आसमान को छूने की ताकत देती है।

भारतीय संस्कृति केवल परंपरा नहीं, यह जीवन का विज्ञान है। इसे अपनाएँ, इसे जीएँ, और इसे आगे बढ़ाएँ।

धन्यवाद।

व्यक्तिगत अनुभव

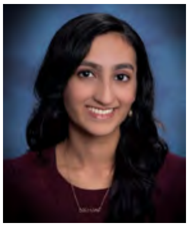

आरिणी पारीक,
कक्षा 12, इंडियाना

मैं भारतीय हूँ

मुझे बचपन में भारतीय क्या होता है, अमेरिकन क्या होता है, उसकी समझ नहीं थी। मैं बस शुरू से भारतीय संस्कृति को अपनाती रही। पता ही नहीं चला मुझे की मैं कब अमेरिकन कम और भारतीय ज़्यादा महसूस करने लगी।

मैं पैदा तो टैक्सस में हुई थी, लेकिन मेरी परवरिश जैसे हुई और जो ऐक्टिविटीज़ में मैंने हिस्सा लिया, उन सब से मैं दिल से भारतीय ही बन गई हूँ।

मेरे मम्मी पापा ने हमेशा मुझसे हिंदी में ही बात करी, तो मैंने पहले हिंदी सीखी, और उसके बाद ही इंग्लिश. बचपन से ही मैं हिंदी मूवीज और टीवी शोज़ देखती आयी हूँ, जैसे की इंडियन आइडल और कौन बनेगा करोड़पति. अब भी जब मुझे टीवी देखने का मन होता है, मैं हिंदी ही देखना पसंद करती हूँ।

हिन्दू परम्परायें और इतिहास के विषय में मैं काफ़ी कुछ जान गई हूँ। थोड़ा मेरे मम्मी पापा से, थोड़ा पुस्तकों से, और थोड़ा कत्थक में गुरुजी से। मैं 6 साल की उम्र से कत्थक सीख रही हूँ। कत्थक सीखने से मुझे बहुत ज्ञान मिला, चाहे वह संगीत के बारे में हो, कत्थक के इतिहास के बारे में, हिन्दी संस्कृति और परंपराओं के बारे में, या फिर भारतीय इतिहास के बारे में।

लेकिन तब भी मुझे हमेशा इंडियन अमेरिकन ही महसूस होता था। आखिर, मैं यूएस में पाली-बड़ी हो कर पूरी भारतीय तो नहीं हो सकती। फिर 9th ग्रेड में मैंने एक नृत्य-नाटिका, समर्पण, में हिस्सा लिया, जिसने भारत की आज़ादी की जंग को दर्शाया था। मैंने उस नाटक में मुग़लों के दरबार में कत्थक तो किया ही, मगर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के देश में लावणी भी किया, गांधीजी के पीछे दंडी मार्च में हिस्सा लिया और ब्रिटिश सिपाहियों के डंडे खाये, और जलियाँवाला बाग में गोलियों की बरसात को महसूस किया।

समर्पण में हिस्सा लेने पर मैं स्वतंत्रता की कीमत असल में समझी। आज़ादी के बारे में फ़िल्में तो मैं काफ़ी देख चुकी थी, लेकिन इन संघर्षों को असल में दर्शाने में कुछ अलग ही महसूस हुआ। मुझे बहुत गर्व हुआ भारत, भारत के इतिहास, और स्वतंत्रता सेनानियों पर। अंत के सीन में, जहां तिरंगा ऊँचा लहराया स्वतंत्र भारत में, और हम सब ने मिलके जन गण मन गाया, मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मेरी आँखें भर आयीं और मुझे ऐसा लगा की मैं मेरे देश के बारे में गा रही हूँ। ऐसा मैंने पहली बार महसूस किया था।

तब मुझे समझ आया की भारतीय होने के लिए भारत में रहना ज़रूरी नहीं है। जैसे इस गाने में है: “मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इंग्लिस्तानी, सर पे लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी". चाहे मैं कहीं भी रहूँ, मेरे अनुभव और परवरिश के वजह से, दिल से, मैं सच में भारतीय ही हूँ और रहूँगी। यही मेरी पहचान है।

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति के आदिम शिलालेख

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति - परिचय

कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह

भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी विश्व की तीसरी प्रमुख भाषा है. भारतीय भाषाओं मे निहित आध्यात्मिक और मानवीय मूल्यों के संवंर्धन हेतु 18 अक्तूबर 1980 को रोज़लिन विर्जीनिया स्थित वेस्ट पार्क होटल में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक, अध्यापक, नाटककार एवं कवि कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की स्थापना हुई. इस अवसर पर कुंवर जी ने भारत की भावात्मक एवं सास्कृतिक एकता के निर्माण में हिन्दी की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए प्रतिपादित किया कि हिन्दी जनसामान्य की भाषा है - खेतिहरों एवम् मजदूरों की भाषा है - सर्वहारा समुदाय की भाषा है, जिसने इस वर्ग को संतो की वाणी के माध्यम से शोषण एवम् अत्याचारों के प्रति संघर्ष की प्रेरणा दी है और आज के समाज में जब वर्ग संघर्ष चरम सीमा पर पंहुच चुका है पुनः इस भाषा को अपनी भूमिका निभानी है. समिति के मुख्य उद्देश्य हैं:

(क) प्रवासी भारतीयों के मध्य भाषा एवं संस्कृति की जागृति बनाए रखना एवं भारतीय भाषाओं में निहित जीवन मूल्यों का प्रसार करना.

(ख) व्यक्तिगत एवम् सामूहिक स्तर पर विचार विनिमय को प्रोत्साहित करना.

(ग) भारतीय भाषाओं और उसके साहित्य के शिक्षण को प्रोत्साहित करना.

(घ) भारतीय भाषाओं और संस्कृति के प्रति युवा पीढ़ी में अनुराग उत्पन्न करने के लिए शिविरों का आयोजन एवं सांस्कृतिक संगोष्ठियों का समय समय पर आयोजन करना.

(ङ.) भारतीय मूल के समाजशास्त्रियों एवं वैज्ञानिकों को तकनीकी विषयों पर भारतीय भाषाओं मे अनुवाद और मूललेखन की प्रेरणा प्रदान करना.

(च) भारतीय भाषाओं के लेखकों के लिए एक मंच स्थापित करना.

(छ) भारत के प्रमुख लेखकों और दार्शनिकों को समय समय पर आमंत्रित करना.

योजनायें

- टाऊसन विश्वविद्यालय के आधुनिक भाषा विभाग के तत्वावधान में हिन्दी के प्रशिक्षण का आरम्भ.
- **प्रकाशन योजना** के अन्तर्गत
  - अमेरिका के हिन्दी कवि,
  - घटाएं - मोही नय्यर की रुबाईयों का संग्रह,
  - बातें मन की - राजेन्द्र मिश्र के प्रवासी भारतीयों की मानसिकता का रोचक सर्वेक्षण
  - अशोक सिन्हा के खण्डकाव्य '**एकलव्य**' एवम् 'भगवद् गीता' के पद्यानुवाद

  आदि का प्रकाशन.
- त्रैमासिक पत्रिका '**विश्वा**' का प्रकाशन.
- चतुर्थ विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन.
- हिन्दी पुस्तकों की **प्रदर्शनी** का आयोजन.
- भारत एवम् विदेशों मे प्रकाशित हिन्दी ग्रंथों को पुरुस्कार
- समय समय पर साहित्यकारों की जयन्ती एंव सम्मान
- हिन्दी भाषा को सुगमता तथा से सीखने के लिए वीडियो टेप का निर्माण.

सदस्यता पत्र

नाम ______________________ फोन: ____________

पता ______________________________________

______________________ ZIP __________

सदस्यता शुल्क: सामान्य $ 20.00, चार्टर्ड $ 100.00, आजीवन $ 275.00

कृपया चैक 'अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति' के नाम से भेजें.

International Hindi Association
9227 Farnsworth Dr
Potomac Md 20854

समिति परिवार के आजीवन सदस्यों की साहित्यिक उपलब्धियाँ

(हर दो वर्ष बाद समिति का अधिवेशन आयोजित होता है।

यहाँ हम समिति के आजीवन सदस्यों की साहित्यिक उपलब्धियों को रेखांकित करते हुए 2023-2024 में उनकी मौलिक, उनके द्वारा संपादित और उन पर लिखी पुस्तकों के बारे में सचित्र सूचना दे रहे हैं। इस क्रम को जारी रखते हुए हम 2027 में आयोजित होने वाले अधिवेशन के अवसर पर प्रकाशित विश्वा में 2025-2026 में आजीवन सदस्यों की साहित्यिक उपलब्धियों को दर्ज करना चाहेंगे।

समिति के सभी आजीवन सदस्यों से आग्रह है कि वे यथासमय अपनी साहित्यिक उपलब्धियों की सूचना प्रकाशित पुस्तकों सहित संपादक तक पहुँचाने का कष्ट करें। -सं.)

1. डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह

14 अक्टूबर 2024 को दिल्ली के हंसराज महाविद्यालय में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति के संस्थापक डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाश के स्मृति दिवस पर एक भव्य कार्यक्रम का आयोजन हुआ जिसमें उनके दो संकलनों और उनके साहित्य पर लिखित तीन पुस्तकों का विमोचन किया गया।

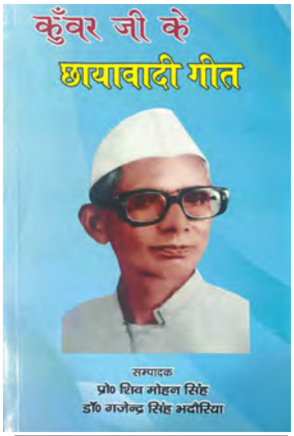

2. डॉ. महेश दिवाकर

समिति के आजीवन सदस्य, निरंतर सक्रिय रचनाकार, साहित्य भूषण से पुरस्कृत।

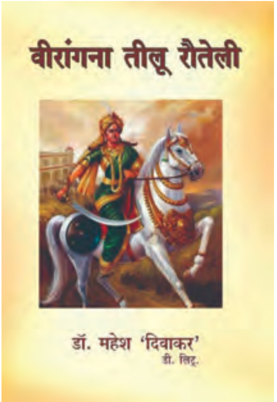

रचना समग्र के खंड 11-12

3. सुमनेश सुमन

समिति के आजीवन सदस्य, मंच के सहज कवि, महाकवि ताराचंद हारीत के 1943 में लिखित महाकाव्य 'हारीत-रघुवंश' का संपादन

4. डॉ. रामगोपाल भारतीय

समिति के आजीवन सदस्य, मानवीय सरोकारों के रचनाकार

5. बधाई और शुभकामनाएँ
हार्वर्ड भी : हार्ड वर्क भी

अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति की बर्कले शाखा के पूर्व अध्यक्ष, हार्वर्ड के पीएचडी, वरिष्ठ रचनाकार वेद प्रकाश बटुक अढ़ाई दशक तक बर्कले में अध्यापन के बाद संप्रति मेरठ में हैं और उम्र के दसवें दशक में भी सृजन रत हैं।

2 नवंबर 2024 को मेरठ में उनकी रचनावली के 5 वें खंड तथा तीन पुस्तकों 1. स्वर्ग रचना 2. दासता की परतें तथा 3. धर्म भ्रष्ट का समारोह पूर्वक विमोचन किया गया।

इस अवसर पर शहीदों के प्रतिबंधित साहित्य को प्रकाश में लाने वाली चंडीगढ़ की लेखिका, शोधकर्ता तथा कवयित्री डॉ राजवंती मान को बटुक जी के अग्रज,स्वतंत्रता सेनानी मास्टर सुंदरलाल स्मृति न्यास सम्मान 2024 से सम्मानित किया गया।

–प्रस्तुति : डा. रामगोपाल भारतीय

6. 20 वर्ष की साधना : भारतेन्दु श्रीवास्तव

भारतेन्दु श्रीवास्तव समिति के वरिष्ठ सदस्य हैं। पिछले 20 वर्षों के महाभारत के अनुवाद की जिस साधना में लगे हुए थे वह सफल हुई। अनुवाद 12 खंडों में प्रकाशित हो चुका है। बहुत बहुत बधाई।

7. अशोक लव

(दिल्ली एन सी आर के शाखा संयोजक)

108 दोहों की राम कथा माला

8. रमेश जोशी, प्रधान संपादक 'विश्वा'

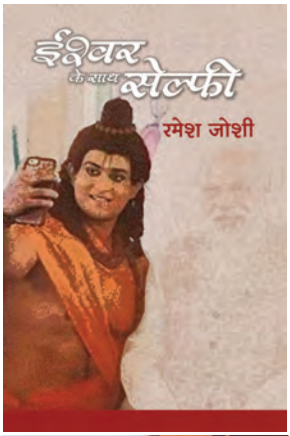

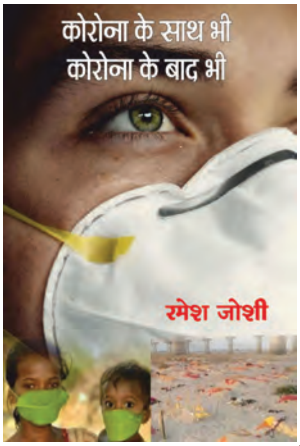

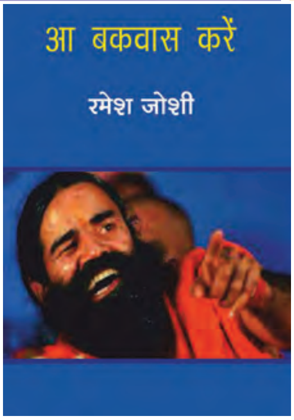

9. डॉ. करुणा पांडे

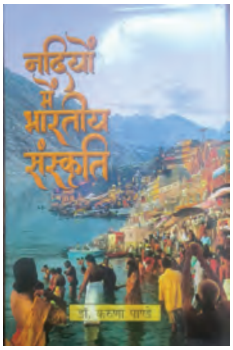

10. लता कादंबरी

11. सत्यपाल सत्यम

मातृभाषा-दिवस

21 फरवरी 1952 के दिन ढाका यूनिवर्सिटी के छात्रों और कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने बांग्ला के स्थान पर उर्दू थोपे जाने के कारण अपनी मातृभाषा के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए एक विरोध प्रदर्शन का आयोजन किया था। यह विरोध जल्द ही नरसंहार में बदल गया जब तत्कालीन पाकिस्तान सरकार की पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर गोलियां चला दीं। इस घटना में 16 लोगों की जान चली गई। 1999 में यूनेस्को ने इस बड़े भाषा आंदोलन में शहीद हुए लोगों की याद में पहली बार 'अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस' मनाने की घोषणा की थी। यह कहा जा सकता है कि बांग्ला भाषियों के अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम के कारण ही आज विश्व में अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस मनाया जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति का २२ वाँ द्विवार्षिक अधिवेशन

22nd Biennial International Hindi Association Convention 2025

May 2nd and 3rd 2025

Hosted by: Northeast Ohio Chapter of IHA, Cleveland, Ohio
आतिथ्य : अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति की उत्तर पूर्वी ओहायो शाखा, क्लीवलैंड, ओहायो

Convention Theme 2025
"New Generation, Hindi, and Culture in the Digital Age."
अधिवेशन का मूल विषय
"नव पीढ़ी, डिजिटल युग में हिंदी और संस्कृति।"

Session 2 &3 VENUE: QUALITY INN & SUITES, 4742 Brecksville Rd, Richfield, OH 44286
Session 1 VENUE: Highland High School, 4150 Ridge Rd, Medina, OH 44256

Reserve for $89.99/night (1 king or 2 double beds/room accommodating up to 4). Call Quality Inn at (330) 659-6151, mention 'IHA Convention' to reserve.

IHA invites you to enjoy, participate and learn through creative, educational, and entertaining events: Kavi Sammelan; Cultural program; Workshops in breakout sessions; Networking; Lunch and Dinner.

Abhinav Shukla
(Humor)

Archana Panda
(Lyricist)

Indra Awasthi
(Satirist)

Please Support IHA Convention with your sponsorships at Diamond, Platinum, Gold, Silver, and Bronze Levels
Contact: Dr. Shobha Khandelwal (330)421-6638 | Ashwani Bhardwaj (216)926-7890

www.hindi.org, www.iha-neohio.com, e-mail: ihaconvention@gmail.com

Program Details

Session 1
Date: May 2nd, 2025 (Friday)
Time: 6PM to 10.30PM
Activities: Dinner, Inauguration, Cultural Program, Chapter Presentation

Session 2
Date: May 3rd, 2025 (Saturday)
Time: 9 AM to 4 PM
Activities: Educational Seminars focusing on our theme. Lunch and snacks will be provided.

Session 3
Date: May 3rd, 2025 (Saturday)
Time: 6PM to 10.30PM
Activities: Dinner, Welcome and Chief Guest's Address and Grand Hasya Kavi Sammelan

Registration Link:
https://bit.ly/4iChb7k

For Registration Tickets and Sponsorships, Please contact us

Dr. Rakesh Ranjan (216)870-4375
Dr. Shail Jain (330)421-7528
Dr. Somnath Roy (440)897-9053
Dr. Prakash Chand (440)864-2123

Anurag Gupta (858)257-8985
Renu Chadda (216)544-7285
Kiran Khaitan (330)622-1377

PRINTED VISHWA - ISSN 25721550
ONLINE e-VISHWA - ISSN 25721569

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति का २२ वाँ द्विवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशन

22th Biennial International Hindi Convention 2025

(May 2nd and 3rd 2025)

Hosted by: Northeast Ohio Chapter of IHA, Cleveland, Ohio

आतिथ्य – अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति. की उत्तरपूर्व ओहायो शाखा,क्लीवलैंड, ओहियो

Convention Theme 2025

“New Generation, Hindi, and Culture in the Digital Age.”

अधिवेशन का मूल विषय – 'नई पीढ़ी, डिजिटल युग में हिंदी और संस्कृति'

VENUE

QUALITY INN & SUITES, 4742 Brecksville Rd, Richfield, OH 44286

Reserve for $89.99/night (1 king or 2 double beds/room accommodating up to 4).
Call Quality Inn at (330) 659-6151, mention ‘IHA Convention’ to reserve.

IHA invites you to enjoy participate and learn through creative, educational, and entertaining events: Kavi Sammelan; Cultural program; Workshops in breakout sessions; Networking; Lunch and Dinner.

Please Support IHA Convention with your sponsorships at Diamond, Platinum, gold, Silver and Bronze Levels. Please Contact:

Dr. Shobha Khandewal
(330)421-6638

Ashwani Bhardwaj
(216)926-7890

www.hindi.org, www.iha-neohio.com, e-mail: ihaconvention@gmail.com

Theme: “New Generation, Hindi, and Culture in the Digital Age.”

Program Details:

Session 1:
Date: May 2nd, 2025 (Friday)
Time: 6 PM

Activities: Inauguration, Cultural Program, Chapter Presentation, Dinner

Session 2:
Date: May 3rd, 2025 (Saturday)
Time: 9 AM to 4 PM

Activities: Educational Seminars focusing on our theme, including various sessions on “New Generation, Hindi, and Culture in the Digital Age.” Lunch and snacks will be provided.

Session 3:
Date: May 3rd, 2025 (Saturday)
Time: 6PM to 11 PM
Activities: Welcome and Chief Guest’s Addres, Dinner, and Grand Hasya Kavi Sammelan

Registration Link:
https://bit.ly/4iChb7k

For Registration Tickets and Sponsorships, please contact us.

Dr. Rakesh Ranjan (216)870-4375
Dr. ShailJain (330)421-7528
Dr.Somnath Roay (440)897-9053
Anurag Gupta (858)257-8985
Renu Chadda (216)544-7285
Kiran Khaitan (330)622-1377
Dr. Prakash Chand (440)864-2123